



Freedom is in Peril. Defend it with all your might. Jawaharlal Nehru

कश्मीर में गर्मी जबकि उत्तराखंड, हिमाचल में ट्रैफिक का कहर, इन सबका माजरा क्या

अकाल तख्त और तख्त श्री पटना साहिब का टकराव

www.navjivanindia.com | @navjivanindia | www.nationalheraldindia.com | www.qaumiawaz.com



मूंग को लेकर रहिए सतर्क

किसकी आंख में धूल झोंक रहा आयोग?

चुटकुला बन गई देश की सबसे भरोसेमंद मानी जाने वाली संस्था, कुछ सीधे और सख्त सवाल पूछना जरूरी

योगेन्द्र यादव

वही हुआ, जिसका अंदेशा था। दिल्ली से एक तुंगलकी फरमान जारी हो गया। जब फरमान बिहार की धरती पर पहुंचा, तो रायता फैल गया। उसे समेटा तो जा नहीं सकता, इसलिए अब रायता ढंकने की कोशिश हो रही है। सुबह अखबार में चुनाव आयोग का विज्ञापन छपता है। शाम को चुनाव आयोग उसका खंडन करता है। बिहार के कोने-कोने से आ रही खबरें तकलीफदेह हैं। इसलिए जमीनी स्थिति को ठीक करने की बजाय चुनाव आयोग खबर देने वालों की खबर ले रहा है। अविश्वसनीय आंकड़े उछाल रहा है। वह संस्था जो बीस साल पहले तक देश की सबसे भरोसेमंद संस्था मानी जाती थी, आज चुटकुला बन गई है। इसलिए जरूरी है चुनाव आयोग में विराजमान त्रिमूर्ति से कुछ सीधे और सख्त सवाल पूछने की।

1

जब नए मुख्य चुनाव आयुक्त ने पद ग्रहण किया, तो घोषणा की गई थी कि चुनाव आयोग राय-मशवरा करने में यकीन करता है। गाजे-बाजे के साथ बताया गया था कि चुनाव आयोग ने दो महीने में पार्टियों के साथ चार हजार से ज्यादा बैठकें की हैं। क्या आपने इनमें से किसी भी बैठक में यह इशारा भी किया कि आप पूरे देश की वोटर लिस्ट का 'विशेष गहन पुनरीक्षण' करने जा रहे हैं? क्या आपको इतना बड़ा फैसला लेने से पहले देश की और खास तौर पर बिहार की पार्टियों से राय-मशवरा नहीं करना चाहिए था?

2

वर्ष 2003 के बाद से चुनाव आयोग ने "गहन पुनरीक्षण" यानी वोटर लिस्ट को नए सिरे से बनाने की प्रक्रिया रोक दी थी। आपके पास उस फैसले को बदलने का क्या कारण है? "गहन पुनरीक्षण" के लिए अपने जितने भी कारण गिनाए हैं (शहरीकरण, आप्रवास, डुप्लीकेट वोट आदि) उनका समाधान वर्तमान वोटर लिस्ट में विशेष और गहन संशोधन से क्यों नहीं हो सकता? उसके लिए पुगनी लिस्ट को खारिज कर नई लिस्ट बनाने की क्या जरूरत है? क्या चुनाव आयोग ने यह फैसला लेने से पहले इसके नफा-नुकसान का मूल्यांकन किया था? क्या चुनाव आयोग ने अपने ही भीतर राय मशवरा किया था? क्या वह फाइल सार्वजनिक की जा सकती है?

3

आपने 2003 की वोटर लिस्ट को पुनरीक्षण का आधार बनाया है। बाद वाली लिस्टों की तरह वह लिस्ट भी पुगनी लिस्ट के संशोधन से ही बनी थी। तब भी वोटर से कोई प्रमाणपत्र नहीं मांगा गया था। तब आखिर 2003 को

प्रमाणिक मानने और बाद वाली लिस्टों को खारिज करने का क्या आधार है? क्या चुनाव आयोग मानता है कि 2003 के बाद जितने चुनाव हुए, वे दोषपूर्ण वोटर लिस्ट से हुए थे?

4

जिन वोटर का नाम 2003 की लिस्ट में नहीं था, उनसे आपने 11 दस्तावेजों में से कोई एक मांगा है। क्या चुनाव आयोग को भरोसा है कि हर भारतीय नागरिक के पास इनमें से कोई न कोई दस्तावेज जरूर होगा? क्या चुनाव आयोग ने यह जांचा कि यह 11 दस्तावेज बिहार में कितने प्रतिशत लोगों के पास हैं? अगर पता किया था, तो चुनाव आयोग यह आंकड़ा सार्वजनिक क्यों नहीं करता? या फिर चुनाव आयोग उन लोगों को जबाब क्यों नहीं देता जिन्होंने आधिकारिक आंकड़े देकर साबित किया है कि ऐसे दस्तावेज बिहार में आधे लोगों के पास भी नहीं हैं?

5

आधार, राशन कार्ड और मनरेगा जाँब कार्ड जैसे दस्तावेज जो साधारण लोगों के पास होते हैं, उन्हें चुनाव आयोग क्यों नहीं स्वीकार करता? जो 11 दस्तावेज मान्य हैं, उनमें और इन दस्तावेजों में क्या फर्क है? जब आधार कार्ड दिखाने पर मिलने वाला आवास प्रमाणपत्र मान्य है, तो आधार कार्ड क्यों नहीं? चुनाव आयोग खुद अपना जारी किया फोटो पहचान पत्र क्यों नहीं मानता?

6

आपने इस आदेश को सबसे पहले बिहार पर लागू क्यों किया, और वह भी चुनाव से सिर्फ चार महीना पहले? क्या चुनाव आयोग ने दिसंबर में बिहार की वोटर लिस्ट के संशोधन का काम पूरा नहीं कर लिया था? क्या उस वोटर लिस्ट के बारे में किसी भी पार्टी की तरफ से कोई बड़ी धांधली की शिकायत आई थी? क्या महाराष्ट्र की तरह बिहार में वोटरों की संख्या में अप्रत्याशित बढ़ोतरी हुई थी? क्या किसी भी पार्टी या संगठन ने बिहार चुनाव से पहले लिस्ट को खारिज करने की मांग की थी?

7

इतने बड़े आदेश को सिर्फ 12 घंटे के नोटिस पर क्यों लागू किया गया? यह कैसे मान लिया कि आप शाम को दिल्ली से आदेश जारी करेंगे और अगले दिन सुबह बिहार के 97 हजार बूथ पर फॉर्म का वितरण शुरू हो जाएगा? क्या चुनाव आयोग को इतना भी नहीं पता था कि आठ करोड़ नामसहित फॉर्म छापने में कितने दिन लगेंगे? क्या चुनाव आयोग नहीं जानता था कि 97 हजार में से 20 हजार बूथों पर बूथ लेवल ऑफिसर का पद रिक्त पड़ा था, (और दो सप्ताह बाद आज भी रिक्त पड़ा है)?



घनवत्कर बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जिन्हें समझ नहीं आ रहा कि कौन कागज मान्य होगा और कौन नहीं।

पाठकों से

जब यह अंक प्रकाशन के लिए मेजा गया, चुनाव आयोग के अस्पष्ट 'स्पष्टीकरणों' और आए दिन बदलते नैरेटिव के कारण बिहार के मतदाताओं में भ्रम की स्थिति थी। 10 जुलाई को सुप्रीम कोर्ट में याचिकाओं पर सुनवाई थी। उसका जायजा लेने के लिए हमने प्रकाशन रोक़ा। कोर्ट ने मतदाता सूची के गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) प्रक्रिया पर रोक नहीं लगाई। लेकिन नागरिकता सत्यापन को लेकर चुनाव आयोग के अधिकार क्षेत्र पर सवाल उठाए हैं, और आयोग से आधार, मतदाता पहचान पत्र और सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) राशन कार्ड को वैध दस्तावेज मानने का आग्रह किया है। अगली सुनवाई 28 जुलाई को है और चुनाव आयोग को 21 जुलाई तक अपना जवाब देना है।

8

इतनी विशाल और जटिल प्रक्रिया के लिए सिर्फ एक महीने का समय क्यों दिया गया? क्या आज तक कभी भी करोड़ों लोगों से ऐसा काम एक महीने में पूरा हुआ है? जब बिहार में जाति सर्वे में लोगों से बिना कोई फॉर्म भरवाए, बिना कोई दस्तावेज मांगे, उसे पूरा करने में पांच महीने लगे थे, तो अब यह चमत्कार एक महीने में कैसे हो जाएगा? आपको पता नहीं था की यह बिहार में मानसून और बाढ़ का महीना है? आप किस दुनिया में रहते हैं?

9

मान लिया कि जल्दबाजी या किसी दबाव में आपसे गलत फैसला हो गया। अब अपनी गलती मान क्यों नहीं लेते आप? नित नए बहाने क्यों बनाते हैं? आप जानते हैं कि डुप्लीकेट वोटर को रोकने का इस पुनरीक्षण से कोई लेना देना नहीं है। फिर ऐसे लचर तर्क का सहारा क्यों लेते हैं? आपको बिहार की 2025 की नई वोटर लिस्ट में गैर कानूनी विदेशियों के बारे में कितनी शिकायत मिली है? अगर नहीं मिलीं, तो उसका बहाना क्यों बनाते हैं?

10

आप जानते हैं की 2003 में बिहार में जो 4.96 करोड़ वोटर थे, उनमें से कोई डेढ़ करोड़ या तो मर गए हैं, या बिहार छोड़ चुके हैं। फिर बार-बार आप यह क्यों कहते हैं कि 4.96 करोड़ लोगों को प्रमाण नहीं दिखाना होगा? झूठ बोलना आपको शोभा देता है?

11

पिछले एक सप्ताह से आप हर रोज चमत्कारिक आंकड़े जारी करवा रहे हो, जिनपर लोग हंस रहे हैं। बिहार में आधे लोगों को भी अभी तक फॉर्म नहीं मिले हैं, और आपका आंकड़ा कहता है कि 36 प्रतिशत लोगों ने अब तक फॉर्म भर कर जमा भी कर दिए हैं! अगर सच है, तो आप उनके नाम सार्वजनिक क्यों नहीं कर देते? नहीं तो आप किसकी आंख में धूल झोंक रहे हो? ठेठ बिहारी अंदाज़ में पूछ लूं: का बाबू, पब्लिक को बुड़बक मानते हो? ■

सागर: नवोदय टाइम्स

गाजा में रुक क्यों नहीं रहा नरसंहार

संयुक्त राष्ट्र की विशेष दूत फ्रांसैस्का अल्बानीज इसे ‘नरसंहार की अर्थव्यवस्था’ करार देती हैं जिसमें 60 से ज्यादा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बड़े दांव लगे हैं

अशोक स्वैन

गाजा के खिलाफ इजराइल के सैन्य अभियान को 22 महीने हो रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय कानून और मानवाधिकारों के प्रति दुनिया की सामूहिक प्रतिबद्धता सवालों के घेरे में है। ऐसे में संयुक्त राष्ट्र की विशेष दूत फ्रांसैस्का अल्बानीज की ताजा रिपोर्ट एक खौफनाक सच्चाई का पर्दाफाश करती है- 60 से ज्यादा बहुराष्ट्रीय कंपनियां जिनमें अमेजन, माइक्रोसॉफ्ट, अल्फाबेट (गूगल) जैसी बड़ी तकनीकी कंपनियां; लॉकहीड मार्टिन और एल्विंट सिस्टम्स जैसी रक्षा निर्माता कंपनियां और यहां तक कि ऑनलाइन ट्रेवल एजेंसी बुकिंग्स डॉट कॉम और होमस्टे वगैरह उपलब्ध कराने वाली एयरबीएनबी भी इसमें शामिल हैं। इन कंपनियों के गाजा में बड़े दांव हैं और इसे ही अल्बानीज 'नरसंहार की अर्थव्यवस्था' कहती हैं। अल्बानीज का तर्क है कि ये कंपनियां इसमें मददगार हैं और गाजा पर इजराइल के युद्ध और फिलिस्तीनी इलाके पर दशकों से उसके अवैध कब्जे से मुनाफा कमा रही हैं।

हथियार निर्माण से लेकर क्लाउड कंप्यूटिंग, बायोमेट्रिक निगरानी से लेकर पश्चिमी तट की अवैध बस्तियों में अचल संपत्ति की सूची बनाने तक, इन कंपनियों का इन गतिविधियों में शामिल होना उनकी मिलीभगत को दिखाता है। अल्बानीज की रिपोर्ट उस वैश्विक कॉर्पोरेट व्यवस्था का अपराध है जिसमें सामूहिक हिंसा एक मौका बन जाती है। यह कोई नई बात नहीं। पूरे इतिहास में, शक्तिशाली देशों की मौन स्वीकृति या सक्रिय प्रोत्साहन से, कंपनियों ने जंग और संघर्ष से कमाई की है।

दोनों विश्व युद्धों के दौरान जर्मनी की क्रुप और आईजी फारबेन, अमेरिका की जनरल मोटर्स और ब्रिटेन की विकर्स जैसी कंपनियों ने सेनाओं को हथियार उपलब्ध कराने और हिंसा की मशीनरी को लगातार ईंधन देते रहने के लिए उत्पादन बढ़ाया। ताजी जर्मनी में औद्योगिक कंपनियों ने सरकार को टैकों से लेकर जाइक्लेन-बी गैस तक, हर चीज की आपूर्ति की। आईबीएम जैसी कंपनियों पर यहूदियों के नरसंहार में सहभागिता के आरोप हैं क्योंकि उसने यहूदियों की सूची तैयार करने और उन्हें निशाना बनाने में इस्तेमाल किए जाने वाले



क्रूरता गाजा को भावी सैन्य ऐप्लीकेशन के परीक्षण की प्रयोगशाला बना दिया गया है।

पंच-कार्ड सिस्टम उपलब्ध कराए। रंगभेदी दक्षिण अफ्रीका में बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने वाहनों और निगरानी उपकरणों की आपूर्ति करके अखेटे बहुसंख्यों पर अत्याचार में सत्ता का साथ दिया। इराक और अफगानिस्तान में हॉलिवर्टन/केबीआर और ब्लैकवाटर जैसी कंपनियों ने बिना बोली लगाए अरबों के ठेकों पाए और पुनर्निर्माण और निजी सुरक्षा को भारी कॉर्पोरेट मुनाफे का औजार बना लिया।

वैगनर समूह जैसी रूसी कंपनियों ने सूडान और पूरे अफ्रीका में संघर्षरत इलाकों में सैन्य, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों के जरिये भारी कमाई की। सूडान में वैगनर ने आरएफएफ बलों को सैन्य मदद, हथियार और प्रशिक्षण देने के बदले सोने के खनन संबंधी आकर्षक

रियायतें हासिल कीं। ऐसे ही, नोरिको और चेंगदू एयरक्राफ्ट जैसी दिग्गज चीनी सरकारी कंपनियों ने हाल ही में भारत-पाकिस्तान में सैन्य तनाव बढ़ने से अच्छी-खरासी कमाई की। गाजा इस ऐतिहासिक पैटर्न का एक अनेखा आधुनिक संस्करण पेश करता है। लॉकहीड मार्टिन ने इजराइल को एफ-35 लड़ाकू विमानों की आपूर्ति की जिसका इस्तेमाल गाजा के खिलाफ बमबारी अभियानों में किया जा रहा है। 18,000 पाउंड से ज्यादा वजन की वारहेड ले जाने में सक्षम इन लड़ाकू विमानों ने गाजा और इसके आसपास के इलाकों को मलबे में बदलने में मदद की है। 2023 और 2024 के बीच इजराइली सैन्य खर्चे में 65 फीसद की वृद्धि हुई और प्रमुख हथियार निर्माताओं ने जमकर कमाई की। पैलैटिन,

आईबीएम और हेलेट पैकार्ड ने सॉफ्टवेयर, डेटाबेस के अलावा निगरानी उपकरण उपलब्ध कराए जो लक्ष्यों की पहचान करने और फिलिस्तीनी गतिविधियों को काबू करने में मददगार साबित हुए।

दिग्गज टेक कंपनियां 'युद्ध अर्थव्यवस्था' की स्तंभ बन गई हैं। 1.2 अरब डॉलर के प्रोजेक्ट निम्ब्स के ठेके के जरिये अमेजन और गूगल इजराइली सरकार और सेना को क्लाउड और एआई सेवाएं उपलब्ध कराती हैं। जब अक्टूबर 2023 में इजराइल का अपना सैन्य क्लाउड ध्वस्त हो गया, तो माइक्रोसॉफ्ट एज्योर ने क्लाउड सेवा उपबल्व कराई। कभी रसद या ग्राहक सहायता के लिए खरीदी जाने वाली ये सेवाएं अब स्वचालित 'किल लिस्ट' और युद्धक्षेत्र विश्लेषण को सक्षम बनाती हैं। अल्बानीज आगाह करती हैं कि इन दोहरे उपयोग वाली तकनीकों का इस्तेमाल मानवाधिकारों

के उल्लंघन से कहीं आगे की बात है- आबादी पर इनका परीक्षण करके, गाजा को भविष्य के सैन्य ऐप्लिकेशन की प्रयोगशाला में तब्दील कर दिया गया है।

सॉफ्टवेयर और सेंसर के अलावा, कब्जे का भौतिक बुनियादी ढांचे का भी गहवाई से व्यवसायीकरण हो रहा है। कैटरपिलर और वोल्वो, फिलिस्तीनी घरों को गिराने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले बुलडोजर की आपूर्ति करते हैं। बुकिंग डॉट कॉम और एआईआरबीएनबी पश्चिमी तट पर अवैध बस्तियों में छुट्टियों के लिए किराये की जगहें सूचीबद्ध करते हैं, और 'उपनिवेशीकरण के पर्यटन' से कमाई करती हैं। ओर्बिंया और ग्लेनकोर जैसी कंपनियां सिंचाई और ईंधन प्रदान करती हैं, और जब्त की गई जमीन पर अवैध तौर पर कृषि को बढ़ावा देती हैं। ब्लैकरॉक और वैन्गार्ड जैसे बैंक और ऐसेट मैनेजर इनमें से कई कंपनियों में बड़ी हिस्सेदारी रखते हैं और इस तरह जंग से जुड़े अपने पोर्टफोलियो से वे भी मुनाफा कमाते हैं।

मिलीभगत की यह विशाल आपूर्ति श्रृंखला वैश्वीकरण का कोई अनायास उत्पाद नहीं। कॉर्पोरेट ढांचे के भीतर इसे प्रोत्साहित करने वाले संरचनात्मक अवयव हैं: युद्ध, विस्थापन और दमन लाभदायक हैं। अफ्रीका में रबर और खनिजों के औपनिवेशिक दोहन से लेकर कांगो लोकतांत्रिक गणराज्य में हाल ही में कोल्टन के खनन तक, जहां आम तौर पर बंधुआ मजदूरों का इस्तेमाल किया जाता है और संघर्ष की आग को भड़काए रखा जाता है, कंपनियों ने लोगों की तकलीफ से पैसा कमाने के तरीके खोजे हैं। पैलैटियर जैसी निगरानी और साइबर सुरक्षा कंपनियां 'आतंकवाद के खिलाफ युद्ध' के दौरान फली-फूली हैं। मीडिया घरानों की कमाई में संघर्ष के दौरान उछाल देखने को मिलता है। वित्तीय संस्थान युद्ध बांड और रक्षा शेयरों से लाभ कमाते हैं। यहां तक कि नेस्ले और कारगिल जैसी खाद्य और रसद कंपनियां भी सामूहिक हिंसा वाले क्षेत्रों में काम करती रही हैं, जिन पर कभी-कभी जबरन श्रम से कमाई करने के आरोप लगते हैं।

अल्बानीज की रिपोर्ट मांग करती है कि हम यह दिखावा बंद करें कि आर्थिक हिंसा किसी भी तरह शारीरिक हिंसा से अलग है। अगर हम गाजा में मर्यादता को खत्म करने और भावी नरसंहारों को रोकने के लिए गंभीर हैं तो उनके पीछे की कॉर्पोरेट मशीनरी को ध्वस्त करना होगा

श्रेष पेज 2 पर ►

गाजा में रुक क्यों नहीं रहा नरसंहार



» पेज एक का शेष

फिर भी, जवाबदेही दुर्लभ है। कुछ कंपनियों को जरूर कानूनी और प्रतिष्ठा पर आंच का सामना करना पड़ा है। उदाहरण के लिए वोक्सवैगन और सीमेंस को आखिरकार नाजियों के शासन में जबरन श्रम की बात माननी पड़ी है। लेकिन आम तौर पर कंपनियां जटिल आपूर्ति श्रृंखलाओं, लॉबींग और कानूनी खामियों के कारण बच निकलती हैं। गाजा के मामले में अल्बानीज की रिपोर्ट बताती है कि अंतरराष्ट्रीय कानून न केवल देशों, बल्कि निजी संस्थाओं पर भी दायित्व डालते हैं। कॉर्पोरेट संस्थाओं और उनके अधिकारियों को युद्ध अपराधों, नरसंहार और मानवता के विरुद्ध अपराधों में मदद के लिए आपराधिक रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

क्या किया जाना चाहिए, यह स्पष्ट है।

सबसे पहले तो संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद को रिपोर्ट में जिन कंपनियों के नाम हैं, उन पर प्रतिबंध लगाना चाहिए, उनकी संपत्तियां जब्त करनी चाहिए और सदस्य देशों से अनुरोध करना चाहिए कि वे इन कंपनियों के साथ किए सरकारी ठेकों को रद्द कर दें। इसकी एक मिसाल भी है: प्रतिबंधों ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद को कम करने में मदद की और बाल्कन युद्ध अर्थव्यवस्थाओं में कॉर्पोरेट भागीदारी को कम किया। दूसरा, सदस्य देशों के वित्तीय संस्थानों को इन कंपनियों से अपना निवेश वापस ले लेना चाहिए। पेंशन फंड, सॉवरन वेल्थ फंड और एसेट मैनेजर नरसंहार से कमाई करते हुए टटस्थता का दावा नहीं कर सकते। तीसरा, परिष्कारी देशों की अदालतों को सार्वभौमिक अधिकार क्षेत्र के सिद्धांत के तहत अधिकारियों

के खिलाफ कार्यवाही करनी चाहिए। कई यूरोपीय देश कथित युद्ध अपराधियों पर मुकदमा चलाने के लिए पहले ही ऐसे कानून बना चुके हैं। वे कॉर्पोरेट अधिकारियों के खिलाफ भी ऐसा कर सकते हैं।

अंतरराष्ट्रीय समुदाय को इससे भी आगे बढ़ना होगा। अंतरराष्ट्रीय आपराधिक अदालत (आईसीसी) के गठन के लिए जिम्मेदार 'रोम प्रावधान' में बदलाव करके इसमें कॉर्पोरेट दायित्व को भी शामिल करना होगा। आईसीसी को न केवल जनरलों और मंत्रियों की, बल्कि उन सीईओ की भी जांच करनी चाहिए जो जान-बूझकर सामूहिक हिंसा की मशीनरी को आपूर्ति करते हैं। फिलस्तीनियों का यह हाल करने वाले देशों ही नहीं बल्कि उनकी तकलीफ पर मुनाफे की इमारत खड़ा करने वाली कंपनियों से भी मुआवजा वसूला जाना चाहिए।

रंगभेद बाद के अफ्रीका में प्रस्तावित रंगभेदी संपत्ति कर जैसी पहल से पुनर्निर्माण के लिए धन जुटाया जा सकता है और विस्थापित समुदायों की मदद की जा सकती है। फ्रांसेस्का अल्बानीज की रिपोर्ट केवल एक खुलासा नहीं बल्कि रोडमैप है। यह कंपनियों के नाम बताती है, उनके निवेश और अनुबंधों का पर्दाफाश करती है। यह मांग करती है कि हम यह दिखावा करना बंद करें कि आर्थिक हिंसा किसी भी तरह शारीरिक हिंसा से अलग है। अगर हम गाजा में भयावहता को खत्म करने और भावी नरसंहारों को रोकने के लिए गंभीर हैं, तो उनके पीछे की कॉर्पोरेट मशीनरी को ध्वस्त करना होगा। ■

अशोक खैन स्वीडन के उसला दिक्विटालय ने 'पीस एंड कॉन्फ्लिक्ट हिस्टरी' को प्रोफेसर है।

तख्तों के टकराव के केन्द्र में शिरोमणि प्रबंधक कमेटी

बड़े मर्ज की ओर इशारा कर रही अमृतसर के अकाल तख्त और बिहार के तख्त श्री पटना साहिब की तनातनी

हरगिंदर

यह पुरानी कहानी का नया अध्याय भर नहीं है। अमृतसर के अकाल तख्त और बिहार के तख्त श्री पटना साहिब के बीच टकराव की स्थितियां पहले भी कई बार सामने आई हैं। इस बार हालात अलग इसलिए हैं कि पिछले कुछ समय से लगातार जत्थेदारों की नियुक्ति और उन्हें हटाए जाने को लेकर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी यानी एसजीपीसी जिस तरह विवादों में घिरी रही है, ताजा टकराव भी उसी की अगली कड़ी बन गया है। यह किसी बड़े मर्ज की ओर भी इशारा कर रहा है।

ताजा विवाद कुछ समय पहले तब शुरू हुआ जब तख्त श्री पटना साहिब के जत्थेदार ज्ञानी रंजीत सिंह गौहर को वित्तीय गड़बड़ियों के आरोप में उनके पद से हटा दिया गया। गौहर बादल परिवार के नजदीकी माने जाते हैं। एसजीपीसी पर बादल परिवार की पकड़ के कारण पंजाब के तीनों तख्तों के जत्थेदार मिले और गौहर को बहाल कर दिया गया।

यह बहाली सिख पंथ के पांचों तख्तों के बीच 2008 में बनी एक सहमति के विपरीत थी। उस समय भी पटना साहिब और अकाल तख्त के बीच विवाद काफी गर्म हो गया था। बाद में बीच बचाव हुआ और तय किया गया कि पांचों तख्त स्थानीय प्रबंधन के मामले में अपने फैसले लेने को स्वतंत्र होंगे। लेकिन अगर पंथ से जुड़ा कोई व्यापक मसला आएगा, तो पांचों तख्त मिलकर फैसला करेंगे या फिर अकाल तख्त का फैसला सर्वमान्य होगा।

स्थानीय प्रबंधन से जुड़े फैसले को पंजाब में पलट दिया जाना तख्त श्री पटना साहिब को नागवार गुजरा और वहां भी इसका बदला लेने की ठान ली गई। ऐसे मामलों में फैसले का काम रहत-मर्यादा का नियमित पालन करने वाले पांच सिखों को दिया जाता है जिन्हें पंज प्यारे कहा जाता है। सो, पटना साहिब में पंज प्यारे बैठे और उन्होंने अकाल तख्त के कार्यकारी जत्थेदार कुलदीप सिंह गड़गज, दमदमा साहिब के टेक सिंह धुलाणा को तो तनखैया घोषित किया ही, अकाली दल के नेता सुखबीर सिंह बादल को भी तनखैया घोषित कर दिया।

इसके जवाब में पंजाब स्थित तीनों तख्त - अकाल तख्त, तख्त श्री केसगढ़ साहिब और दमदमा साहिब के धर्मिक अगुवा बैठे और पटना साहिब में यह फैसला लेने वालों को ही तनखैया घोषित कर दिया। जवाब में पटना साहिब की ओर से कहा गया कि जो लोग पहले ही तनखैया घोषित हो चुके हैं, उन्हें किसी के बारे में फैसला लेने का कोई अधिकार नहीं, इसलिए यह फैसला निरर्थक है।

यह लड़ाई कहाں पहुंचेगी या मध्यस्थता करके मामले को इस बार भी शांत करा दिया जाएगा, यह अभी नहीं कहा जा सकता। लेकिन इस मामले ने सिख राजनीति के वे सारे अंतर्विरोध सतह पर ला दिए हैं जो इस साल के शुरू से ही काफी उग्र होने लगे थे।

इस साल मार्च में एसजीपीसी ने अचानक ही अकाल



विवाद जत्थेदारों की नियुक्ति के मामले में सामने आई पंथक नेतृत्व में धड़बंदी।

तख्त के जत्थेदार ज्ञानी रघुबीर सिंह को उनके पद से हटकर उनकी जगह ज्ञानी कुलदीप सिंह गड़गज को कार्यकारी जत्थेदार बनाने का ऐलान कर दिया था। इस फैसले की कई संगठनों ने आलोचना की। निहंग जत्थेबंदियों ने तो यहां तक कह दिया कि वे नई नियुक्ति का सक्रिय विरोध करेंगे। कोई बाधा न आए, इसके लिए गड़गज को रात 2.50 बजे ही पदभार ग्रहण करवाया गया।

तख्तों की इस लड़ाई में उंगली उठ रही है एसजीपीसी पर। एसजीपीसी ही जत्थेदारों की नियुक्ति करती है। वह पंजाब के सभी गुरुद्वारों और पूरे देश के ऐतिहासिक गुरुद्वारों का प्रबंधन संभालती है। पहले हरियाणा के गुरुद्वारों का कार्य भी उसी के जिम्मे था। अब वहां अलग प्रबंधक समिति बन गई है।

एसजीपीसी की राजनीति पर हमेशा से ही अकाली दल हावी रहा है। लेकिन जब अकाली राजनीति पूरी तरह बादल परिवार के कब्जे में चली गई, तो इस पर भी बादल परिवार हावी हो गया। 1999 में यह स्थिति तब और स्पष्ट हो गई जब एसजीपीसी के अध्यक्ष गुरचरण सिंह तोहड़ा का प्रकाश सिंह बादल से मतभेद हुआ। बादल ने तोहड़ा की जगह जागीर कौर को एसजीपीसी अध्यक्ष बनवा दिया। तोहड़ा फिर बादल से मतभेद खत्म करने के बाद ही इस पद पर लौट सके।

अब जब अकाली दल तेजी से अपना जनाधार खोता जा रहा है, एसजीपीसी के राजनीतिक तनाव और बढ़ गए हैं। कुछ ही महीने पहले अकाल तख्त ने सुखबीर सिंह बादल को तनखैया घोषित किया था। दोषमुक्त होने के लिए सुखबीर सिंह बादल ने

तख्त द्वारा दी गई सजा को स्वीकार किया था। माना जाता है कि यह सब कुछ इसलिए हुआ कि सुखबीर बादल की गिर चुकी साख को पंथक वोटरों के बीच फिर से स्थापित किया जा सके।

अकाली दल ही नहीं, इस समय एसजीपीसी खुद भी साख के संकट से गुजर रही है। कभी देश की सबसे लोकतांत्रिक धार्मिक संस्थाओं में गिनी जाने वाली एसजीपीसी में पिछले लगभग डेढ़ दशक से चुनाव ही नहीं हुए हैं। एसजीपीसी के अध्यक्ष और इसकी कार्यकारिणी का चुनाव मतदान से होता है जिसमें आम सिख मतदान करते हैं। लेकिन 2011 के बाद 2016 में होने वाले चुनाव हुए ही नहीं।

चुनाव न होने के कारण बहुत सारे हैं। सबसे बड़ा तो यह है कि सहजधारी सिखों से इस चुनाव में वोट डालने का अधिकार छीन लिया गया। यह मामला अदालत में है। इसके अलावा, मतदाता सूचियां बनाने जैसे काम नहीं हुए हैं। हरियाणा की कमेटी अलग बन जाने के बाद अब नए सिरे से निर्वाचन क्षेत्र भी बनाने होंगे। यह काम भी नहीं हो सका है। सबसे बड़ी बात है कि इसके चुनाव हो सके, यह चिंता भी कहीं नहीं दिख रही है।

तख्तों का टकराव और एसजीपीसी की साख दोनों ही पंथक नेतृत्व की गड़बड़ियों की ओर इशारा कर रहे हैं। कभी जो एक भरोसेमंद संस्था थी, अब उसमें धड़बंदी, बिखराव और राजनीतिक हस्तक्षेप सतह पर है। एसजीपीसी के पूर्व महासचिव सुखदेव सिंह बहूर कहते हैं, "जब शिरोमणि प्रबंधक कमेटी ही रास्ते से भटकती दिख रही है, तो किसे क्या दोष दिया जाए?" ■

केजरीवाल की रणनीति और सुपर मुख्यमंत्री का तगमा

आप संयोजक पंजाब से राज्यसभा पहुंचेंगे या नहीं, इससे बड़ा सवाल यह है कि क्या वह अपना भविष्य पंजाब में ही देख रहे हैं?

हरगिंदर

बेशक, इसमें कुछ भी नया नहीं है। जैसे कार्यक्रम सभी राज्यों में होते हैं, वैसे ही पंजाब में भी हो रहे हैं। मसलन, 7 जुलाई को लुधियाना पश्चिम उपचुनाव में आम आदमी पार्टी की जीत के लिए धन्यवाद रैली हुई। फिर उसी दिन मोहाली में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट का उदघाटन हुआ। नेशनल एचीवमेंट सर्वे 2024 की रिपोर्ट में पंजाब शिक्षा में अक्वल रहा, इसके लिए शिक्षकों की सभा हुई। अगले दिन सरकारी स्वास्थ्य बीमा के लिए लोगों को हेल्थ कार्ड बांटे गए और जैस्मीन शाह की किताब 'केजरीवाल मॉडल' के पंजाबी संस्करण का विमोचन भी हुआ।

ऐसे कार्यक्रमों में प्रदेश के प्रधान की उपस्थिति भी अनिवार्य होती है, इसलिए मुख्यमंत्री भगवंत सिंह मान वहां मौजूद थे। लेकिन उनमें प्रमुख थे दिल्ली के पूर्व मुख्यमंत्री और आप संयोजक अरविंद केजरीवाल। इन दिनों राज्य के तकरीबन सभी आयोजनों में वह न सिर्फ मौजूद रहते हैं, बल्कि ज्यादा महत्व भी उन्हीं को मिलता है। कभी लैंड रजिस्ट्री के नए नियमों की घोषणा में शामिल होते हैं, तो कभी उद्योगों के लिए पोर्टल जारी करते हैं। केजरीवाल की सारी राजनीतिक गतिविधियां पंजाब में ही चल रही हैं। दिल्ली से उनकी सक्रियता की खबरें तकरीबन नहीं ही आती हैं। इसे पार्टी के एक्स और यू-ट्यूब एकाउंट पर भी देखा जा सकता है। कुछ कार्यक्रमों में उनका साथ देने के लिए दिल्ली के पूर्व उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया भी मंच पर होते हैं।

पंजाब में 2022 में जब आप की सरकार बनी और मान ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली, तो एक साल से भी ज्यादा समय तक पूरे राज्य में 'दिल्ली मॉडल' की ही चर्चा होती थी। दिल्ली की तरह बिजली मुफ्त हो, वैसे ही स्कूल बनें और मोहल्ला क्लिनिक भी। कहा जाता था कि मान सरकार पर 'दिल्ली मॉडल' का भूत सवार है। मान भी अक्सर ही दिल्ली में दिखाई देते। विपक्षियों ने कहना शुरू किया कि दिल्ली इस सरकार को रिमोट कंट्रोल से चला रही है।

इस साल फरवरी में जब पार्टी दिल्ली विधानसभा चुनाव हार गई, तो यह कंट्रोल रिमोट भी नहीं रहा। वह सीधे पंजाब आ गया। केजरीवाल दस दिन की विपशना के लिए होशियारपुर पहुंचे तो उनकी सेवा के लिए राज्य सरकार का पूरा अमला तैनात था। इसके बाद वह लगातार पंजाब में ही सक्रिय हैं।



बेठरली जिस दिल्ली ने केजरीवाल को लगातार सता सीपी, उसे आम आदमी पार्टी संयोजक ने उपेक्षित छोड़ दिया है।

दिल्ली की उनकी राजनीति अब पूरी तरह आतिशी मलेंना और सौरभ भारद्वाज के हवाले है। कालकाजी में झोपड़ बस्ती उजाड़ने के मुद्दे पर सरकार ने जब आतिशी को गिरफ्तार किया, तो केजरीवाल ने सिर्फ सोशल मीडिया में इसकी निंदा की। वह किसी विरोध प्रदर्शन में तो शामिल नहीं ही हुए, प्रेस कॉन्फ्रेंस करने तक की जरूरत नहीं समझी। इसे लेकर यह भी सुनने में आया कि केजरीवाल पहले दिल्ली के मसलों पर एक्टिव यानी सक्रिय होते थे। अब वह इन्हें लेकर बस प्रतिक्रिया ही देते हैं।

शुरुआत 8 फरवरी को ही हो गई, जब आप को दिल्ली में मात मिली थी। उसी दिन पंजाब के सभी विधायकों को तीन दिन बाद उन्हें दिल्ली में होने वाली एक बैठक में शामिल होने का बुलावा भेज दिया गया। 11 फरवरी को यह बैठक केजरीवाल के फिरोजशाह रोड स्थित आवास पर हुई जिसमें मुख्यमंत्री भगवंत मान समेत पंजाब के सभी

केजरीवाल की पंजाब में राजनीतिक सक्रियता बताती है कि वह यहां कुछ खास देख रहे हैं। वैसे आप का पूरा भविष्य पंजाब में 2027 में होने वाले विधानसभा चुनाव पर ही निर्भर करेगा। इसके लिए पार्टी की वह टीम सक्रिय हो गई है, जिसके खाते में दिल्ली की भारी शिकस्त दर्ज है

91 विधायक शामिल हुए। यह सत्ता का केन्द्र बदलने का पहला संकेत था।

ठीक इसी दिन दो घोषणाएं और हुईं। सिसोदिया को पंजाब का प्रभारी बनाया गया और दिल्ली में पार्टी के एक और प्रमुख नेता सत्येंद्र जैन को पंजाब के सह-प्रभारी का कार्यभार सौंपा गया। केजरीवाल, सिसोदिया और जैन विधानसभा चुनाव हार गए थे। सिसोदिया और जैन ने तो चंडीगढ़ में बाकायदा डेरा ही जमा लिया है। दोनों वहां सेंक्टर 39ए की दो अलग-अलग कोठियों में रह रहे हैं। ये कोठियां कैबिनेट मंत्रियों के नाम एलाट हुई हैं लेकिन मंत्रियों की जगह ये दोनों वहां रह रहे हैं। सिसोदिया जिस कोठी में रह रहे हैं, वह कैबिनेट मंत्री रवजोत सिंह के नाम आवंटित है। बाहर उन्हीं की नेम प्लेट भी लगी है, लेकिन मंत्री वहां रहते नहीं हैं।

कुछ ही समय पहले राज्य सरकार ने एक नई संस्था

बनाई- पंजाब डेवलपमेंट कमिशन यानी पीडीसी। नीति आयोग की तर्ज पर बनी इस संस्था के चेयरमैन खुद मुख्यमंत्री मान हैं, जबकि वाइस चेयरमैन बनाया गया है सीमा बंसल को जो मूल रूप से हरियाणा की हैं। कांग्रेस के वरिष्ठ नेता प्रताप सिंह वाजवा का आरोप है कि इसमें वरिष्ठ पदों पर जितने भी लोग रखे गए हैं, वे पंजाब के बाहर के और ज्यादातर आप के दिल्ली नेतृत्व के करीबी हैं। इसके लिए सरकार ने लेजिस्लेटिव प्रोसीजर को दरकिनारा करके अपारदर्शी ढंग से काम किया है।

भाजपा नेता सुनील जाखड़ के आरोप और भी गंभीर है। उनका कहना है कि पंजाब कैबिनेट की बैठक अब मुख्यमंत्री कार्यालय में नहीं, मुख्यमंत्री आवास में होती है। इससे केजरीवाल और सिसोदिया को बैठक की 'अध्यक्षता' का मौका मिल जाता है। इसीलिए पंजाब के कई विपक्षी नेता केजरीवाल को 'डी-फैक्टो सीएम' या सुपर सीएम भी कहने लगे हैं।

पिछले महीने जब लुधियाना वेस्ट विधानसभा सीट का उपचुनाव हुआ, तो दिल्ली का प्रभाव और भी स्पष्ट तौर पर दिखा। पूरे चुनाव प्रचार पर दिल्ली से गई उस मीडिया टीम ने कब्जा कर लिया जिसके प्रभारी विजय नायर हैं। प्रसंगवश, ये वही विजय नायर हैं जो दिल्ली के शराब घोटाले में एक आरोपी भी हैं। अखबारों में छपी खबरों के अनुसार, बीच चुनाव प्रचार के ही पंजाब की मीडिया टीम के बहुत से लोगों को बाहर का रास्ता भी दिखा दिया गया। इस बीच दिल्ली से आई टीम पर भ्रष्टाचार के आरोप भी लगे। लुधियाना पश्चिम का उपचुनाव जीतने के बाद संजीव अरोड़ा ने राज्यसभा की सीट से इस्तीफा दे दिया है। माना जाता है कि इस सीट से अरविंद केजरीवाल राज्यसभा पहुंचेंगे और राष्ट्रीय राजनीति में फिर से सक्रिय भूमिका निभाएंगे। हालांकि आप ने और खुद केजरीवाल ने इससे इनकार किया है।

केजरीवाल पंजाब से राज्यसभा में पहुंचेंगे या नहीं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या वह अपना भविष्य पंजाब में ही देख रहे हैं? उनकी राजनीतिक सक्रियता तो यही बताती है। आप का पूरा भविष्य अब पंजाब में 2027 में होने वाले विधानसभा चुनाव पर ही निर्भर करेगा। इस चुनाव के लिए पंजाब में पार्टी की वह टीम सक्रिय हो गई है जिसके खाते में दिल्ली की भारी शिकस्त दर्ज है। ■



पर्यटन की बाढ़ और तैयारी का सूखा

गाड़ियों की रेलमपेल वाले पर्यटन का खामियाजा भुगत रहे हैं हिमाचल और उत्तराखंड । इनके लिए उत्तरी राज्यों के नजदीक होना नुकसानदेह साबित हो रहा

अमय शुक्ला

शिमला के डिप्टी कमिश्नर ने हाल ही में घोषणा की कि दो हफ्ते के भीतर शिमला में तीन लाख गाड़ियां आईं, यानी रोजाना 15 हजार गाड़ियां। शिमला में करीब पांच हजार गाड़ियों के लिए पार्किंग की व्यवस्था है। जरा सोचिए, अगर कोई पर्यटक परिवार/समूह दो दिन भी रुकता है, तो रोजाना 30 हजार गाड़ियों की पार्किंग की जरूरत होगी- उपलब्ध क्षमता का छह गुना! (इसमें स्थानीय पंजीकृत वाहन शामिल नहीं जिनकी संख्या करीब 70 हजार है।)

देहरादून, नैनीताल, मसूरी, मनाली, धर्मशाला जैसे दूसरे हिल स्टेशनों में भी स्थिति कुछ अलग नहीं। उस पर, हालत साल-दर-साल बदतर हो रही है। हाल यह है कि पर्यटक घंटों जाम में फंसे रहते हैं, कभी-कभी तो रात भर भी। न खाने-पीने की व्यवस्था और न शौचालय की सुविधा। उनकी आधी छुट्टियां सड़कों पर ही बीत जाती हैं। हालांकि, इस भीड़-भाड़ की असली कीमत तो इन शांत, रमणिक, ब्रिटिश-काल के शहरों के स्थायी निवासियों को चुकानी पड़ती है। वे व्यावहारिक रूप से आधे साल अपने घरों में कैद रहते हैं क्योंकि सड़कों पर पैदल चलने की भी जगह नहीं बचती। मैं हर साल छह महीने के लिए शिमला से करीब 12 किलोमीटर दूर मशोबरा के पास चला जाता हूं और मैंने तय किया है कि जबतक यहां रहूंगा, कभी शिमला नहीं जाऊंगा।

हिमाचल और उत्तराखंड जैसे राज्य गाड़ियों की रेलमपेल वाले इस किस्म के पर्यटन का खामियाजा भुगत रहे हैं। इनके लिए उत्तरी राज्यों के नजदीक होना नुकसानदेह साबित हो रहा है, जबकि कश्मीर कुछ दूर होने और वहां बार-बार बदलते सुरक्षा माहौल की वजह से बाढ़ के प्रकोप से बचा हुआ है।

राज्य सरकारों को इसका अंदाजा होना चाहिए था- पर्यटकों की संख्या में 43% की वृद्धि (2023 का आंकड़ा), आय में इजाफा, और शहरों की गर्मी और प्रदूषण से बचने की हताशा को देखते हुए। लेकिन सरकारों ने इस दुःस्वप्न के लिए कभी योजना नहीं बनाई, जरूरी तैयारियां नहीं कीं। वे जीएसटी और लकजरी करों से जेब भरकर ही संतुष्ट रहे। और उन्होंने जब कुछ योजनाएं बनाईं भी तो सब गलत!

योजना से जुड़ी सबसे बड़ी भूल यह रही कि हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के पहाड़ी इलाकों में महंगे, पर्यावरण के लिए घातक 4-लेन राजमार्गों और एक्सप्रेस-वे का निर्माण किया गया, ताकि ड्राइविंग समय कम किया जा सके और पर्यटकों के लिए पहुंचना आसान हो सके। नतीजा यह हुआ कि इन गंतव्यों पर आने वाली गाड़ियों की संख्या में जबर्दस्त इजाफा हुआ। कालका-शिमला 4-लेन राजमार्ग बनने



बेहाल शिमला में अपनी गाड़ियों से आने वाले पर्यटकों की ऐसी भीड़ रहती है कि घंटों जाम लग जाता है।

अमय शुक्ला

से पहले (वैसे, यह अभी पूरा नहीं हुआ है) शिमला में हर दिन प्रवेश करने वाली कारों की औसत संख्या करीब 4-5 हजार थी जबकि अब यह 15-20 हजार हो गई है। जब ये वाहन शिमला में प्रवेश करते हैं तो उनके लिए पार्क करने की जगह नहीं होती। मनाली में स्थिति और भी खराब है। वहां पीक सीजन में रोजाना 25 हजार गाड़ियां (रोहतांग दर्रे के नीचे) अटल सुरंग को पार करती हैं। राज्य सरकार मूकदर्शक बनी रही और रोहतांग दर्रे को ‘दूसरा करोल बाग’ बनने से रोकने के लिए नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल को टनल से रोजाना गुजरने वाली गाड़ियों की संख्या सीमित करके डेढ़ हजार करनी पड़ी।

शिमला और मनाली की वही गलती मसूरी में दोहराई जा रही है। देहरादून और मसूरी को जोड़ने के लिए 26 किलोमीटर लंबे एलिवेटेड एक्सप्रेस-वे को मंजूरी दी गई है और बताया जा रहा है कि इससे ड्राइविंग का समय सिर्फ 26 मिनट रह जाएगा। इस परियोजना के कारण 17 हजार पेड़ काटे जाएंगे और

अमय शुक्ला

250 परिवार विस्थापित होंगे। यह सीधे-सीधे आपदा को न्योता है। शिमला/मनाली का अनुभव बताता है कि मसूरी जाने वाली गाड़ियों की संख्या 3-4 गुना हो जाएगी और जब ये मसूरी पहुंचेंगी तो उनका क्या होगा? मसूरी में तो शिमला से भी कम पार्किंग की जगह है। मसूरी में तो रिकन बॉन्ड से मिलने आने वालों को पार्किंग मिल जाए, वही गनीमत है!

नौकरशाही लीक से हटकर सोचने की जहमत नहीं उठाती और नेता अपने पसंदीदा ठेकेदारों को सड़कों और बहुमंजिला पार्किंग जैसी बड़ी पूंजी वाली परियोजनाओं का ठेका देकर खुश हैं। लेकिन इस सुविधाजनक व्यवस्था को बदलना होगा क्योंकि इलाके की भौगोलिक स्थितियों को देखते हुए अनिश्चित काल तक सड़कों को ‘चौड़ा’ नहीं किया जा सकता, पार्किंग की और व्यवस्था के लिए जगह नहीं निकाली जा सकती। वैसे भी, इस तरह की गतिविधियां पहले ही अपनी सीमाओं को लॉच चुकी हैं। हमारे पर्वतीय स्थलों को कम राजमार्गों और ज्यादा केबल/रोप-वे की

कश्मीरी महसूस कर रहे तपिश को

सरकार पहलगाम तक 77 किलोमीटर लंबी रेलवे लाइन बनाने की तैयारी कर रही

है, जिसकी न तो स्थानीय लोगों ने मांग की है और न ही इसकी जरूरत है

हारुन रेशी

हर सोखा-जानी के बा कश्मीर दर आयद गर मुर्ग-ए-कबाब अरत के बा बाल-ओ-पर आयद (गम का जला जो भी कश्मीर में क्रदम रखवे, वो भुना परिदा ही क्यों न हो- फिर पर निकल आते हैं)

16वीं सदी के फारसी शायर उर्फी शिराजी का यह शेर कश्मीर की तब की जलवायु का एक खूबसूरत-सा बखान है। हालांकि, अब ऐसा नहीं है। इस जुलाई घाटी में तापमान ने सारे रिकॉर्ड तोड़ दिए। 5 जुलाई को तापमान 37.4 डिग्री सेल्सियस दर्ज किया गया जो 70 सालों में अधिकतम है। श्रीनगर स्थित मौसम विज्ञान केन्द्र के निदेशक डॉ. मुख्तार अहमद ने ‘संडे नवजीवन’ को बताया- ‘5 जुलाई को दर्ज 37.4 डिग्री तापमान 1892 के बाद से जुलाई का तीसरा सबसे अधिक तापमान था। इससे पहले 10 जुलाई 1946 को 38.3 डिग्री और 5 जुलाई 1953 को 37.7 डिग्री तापमान दर्ज किया गया था।’ मैदानी इलाकों की गर्मी से बचने के लिए लोग पहलगाम आते हैं, लेकिन इस पर्यटन स्थल ने भी अपना अब तक का सबसे गर्म जुलाई का दिन (5 जुलाई) देखा जब तापमान 31.6 डिग्री को छू गया।

‘जनत’ में रिकॉर्ड तोड़ पारा कोई अजुबा नहीं, बल्कि बदलते मौसम का असर है। पर्यावरण विज्ञान से जुड़ी पत्रिका ‘एनवायर्नमेंटल रिसर्च लेटर्स’ में प्रकाशित 2019 के अध्ययन के मुताबिक, 1980 से 2016 के दौरान कश्मीर का सालाना औसत तापमान 0.8 डिग्री बढ़ा है। यही वजह है कि इस इलाके में बार-बार लू चल रही है और जिसका पर्यावरण और यहां के जनजीवन पर असर पड़ रहा है। तापमान में इजाफे की वजह है- ग्लोबल वार्मिंग, वनों की कटाई और शहरीकरण। विशेषज्ञों को डर है कि भविष्य में लू के कारण अचानक बाढ़ और बादल फटने जैसी चरम घटनाएं यहां बार-बार देखने को मिल सकती हैं।

बात सिर्फ गर्मी की नहीं। हाल के सालों में घाटी में बारिश और बर्फबारी में भी कमी देखी गई है। दिसंबर 2024 और जून 2025 के बीच 60-99 फीसद कम बारिश दर्ज की गई जिसकी वजह से झेलम नदी के जल स्तर में 30 फीसद की गिरावट आई। इससे सिंचाई, कृषि और घाटी में बिजली का प्रमुख स्रोत जल विद्युत उत्पादन बुरी तरह प्रभावित हुआ है।

सर्दियों की बात करें तो पिछले साल की चिल्लाई कलां (सर्वाधिक ठंड के 40 दिन) के दौरान बर्फबारी चिंताजनक रूप से कम हुई थी। 9 जनवरी को मुख्यमंत्री उमर अब्दुल्ला ने एक्स पर लिखा: ‘मैंने सर्दियों में गुलमर्ग को इतना सूखा कभी नहीं देखा... अगर जल्द ही बर्फ नहीं पड़ी, तो गर्मियां बेहद खराब होने जा रही हैं।’

जनजीवन पर असर

तापमान में हालिया इजाफे ने रोजमर्रा की जिंदगी पर खासा असर डाला है। प्रशासन ने घाटी में स्कूलों का समय बदल दिया है। अब श्रीनगर में क्लास सुबह 7.30 बजे (पहले 9:00 बजे) और ग्रामीण इलाकों में सुबह 8 बजे (पहले 9:30 बजे) लग रही हैं। श्रीनगर के स्थानीय समाचार पत्रों ने एयर-कंडीशनर (एसी), कूलर, पंखे और रेफ्रिजरेटर की बिक्री बढ़ने की रिपोर्ट छापी है। कश्मीर पावर डिस्ट्रीब्यूशन कॉर्पोरेशन ने व्यस्त समय के दौरान मांग 25 फीसद बढ़ने की बात कही है।

किसान और बागवान भी चिंतित हैं। विशेषज्ञों ने आगाह किया है कि बेमौसम गर्मी सेब, धान और केसर जैसी इलाके की मुख्य फसलों को बुरी तरह प्रभावित कर सकती है। शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में कृषि मौसम विज्ञानी प्रो. रेहाना हबीब कहती हैं, ‘25 डिग्री से ज्यादा तापमान सेब के पेड़ों में हार्मोन का बदलाव कर सकता है जिससे उपज और गुणवत्ता दोनों कम हो जाएगी। अप्रैल-मई के दौरान हुई ओलावृष्टि ने शोपियां और कुलगाम में सेब और चेरी के बागों को पहले ही काफी नुकसान पहुंचाया है। लू का प्रकोप तो और भी खतरे पैदा कर रहा है।’ साथ ही वह कहती हैं, ‘इनके अलावा धान और केसर अन्य गर्मी-संवेदनशील फसलें हैं और आरंभिक चरण में जब पौधे बड़े हो रहे होते हैं तो इन्हें खास जल-तापीय माहौल चाहिए होता है।’ इलाके की अर्थव्यवस्था में केसर अहम है और इससे विदेशी मुद्रा भी आती है लेकिन पिछले कुछ सालों से आय और उत्पादन- दोनों में लगातार गिरावट आई है। 2010-11 में तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 400 करोड़ रुपये के बजट के साथ राष्ट्रीय केसर मिशन की शुरुआत की थी, जिसका उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना और गुणवत्ता में सुधार करना था।



हालात कश्मीर में रिकॉर्ड तोड़ गर्मी ने न केवल जनजीवन को प्रभावित किया है बल्कि पर्यावरण को भी खतरे में डाल दिया है।

अमय शुक्ला

उस साल केसर का उत्पादन 8 मीट्रिक टन बताया गया था। 2024 आते-आते उत्पादन घटकर 2.7 मीट्रिक टन रह गया। पिछले साल केंद्रीय कृषि मंत्री अर्जुन मुंडा ने लोकसभा में कहा था कि 2010-11 और 2023-2024 के बीच केसर की पैदावार में 67.5 फीसद की गिरावट आई है। प्रोफेसर हबीब कहती हैं, ‘केसर 15-27 डिग्री के तापमान पर सबसे अच्छा होता है। पिछले 40 सालों में 1.3 डिग्री की औसत तापमान वृद्धि ने इस विरासती फसल को खतरे में डाल दिया है।’

दरअसल, अनिश्चित और बदलते मौसम के मिजाज ने पूरे कृषि क्षेत्र को जोखिम में डाल दिया है, जिससे यह बेहद असुरक्षित हो गया है। बीमा कंपनियां जम्मू-कश्मीर की फसल का बीमा करना नहीं चाहतीं। जून में यूटी कृषि मंत्री जावेद अहमद डार ने पत्रकारों को बताया भी कि जम्मू-कश्मीर के किसानों के लिए बहुप्रतीक्षित फसल बीमा योजना बीमा कंपनियों की बेरुखी की वजह से अटकी हुई है। एक अधिकारी ने नाम न छापने की शर्त पर बताया- ‘जलवायु परिवर्तन के वजह से ये कंपनियां फसलों का बीमा नहीं करतीं।’

पर्यटन भी प्रभावित

जलवायु परिवर्तन से किसान ही नहीं, पर्यटन उद्योग भी उतना ही संकट में है। श्रीनगर के एक होटल मैनेजर फारूक अहमद कहते हैं- ‘पिछले दो सालों में जून और जुलाई की भीषण गर्मी ने कई पर्यटकों को दिन में घर के अंदर ही रहने पर मजबूर कर दिया।’ पर्याप्त बर्फबारी न होने से इस साल

अमय शुक्ला

22-25 फरवरी को गुलमर्ग के स्की रिसॉर्ट में होने वाले खेलो इंडिया विंटर गेम्स को स्थगित करना पड़ा। अहमद ने कहा- ‘यह चिंताजनक है और कश्मीर के उस प्राकृतिक आकर्षण को खोने का खतरा है जो पर्यटकों को अपनी ओर खींचता रहा है।’ विशेषज्ञों का मानना है कि मानवीय लापरवाही इस संकट को और बढ़ा रही है। जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता राजा मुजफ्फर भट ने कहा- ‘कबूल करना होगा कि हमने भी इस परेशानी को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई है- बड़े पैमाने पर जंगल की कटाई, बेतरतीब शहरीकरण और बिना सोचे-समझे बुनियादी ढांचा परियोजनाओं के जरिए।’

साथ ही वह कहते हैं- ‘विकास के नाम पर पिछले चंद सालों के दौरान ही हजारों पेड़ काटे जा चुके हैं। सरकार पहलगाम तक 77 किलोमीटर लंबी रेलवे लाइन बनाने की तैयारी कर रही है, जिसकी न तो स्थानीय लोगों ने मांग की है और न ही इसकी जरूरत है। यह लाइन उपजाऊ कृषि भूमि और वन क्षेत्रों से होकर गुजरेगी और शर्तिया इसके लिए हजारों पेड़ काटे जाएंगे। हम अपने पर्यावरण को ऐसे ही तबाह कर रहे हैं।’

एक आरटीआई आवेदन के जवाब में सरकार ने माना है कि पिछले पांच सालों में कश्मीर में झेलम और उसकी सहायक नदियों के किनारे लगभग 5.84 लाख पेड़ गिराए गए हैं। भट सवाल करते हैं- ‘सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण विभाग ने काटे गए पेड़ों के बारे में कहा है कि वे ‘अतिक्रमण’ थे। हम कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि इन कार्रवाइयों से हमारे मौसम के मिजाज पर कोई असर नहीं पड़ेगा?’

कश्मीर की बदलती जलवायु शिराजी के शानदार शेर का मजाक उड़ा रही है! ■



सरकार की कृपा से जहरीला मूंग बाजार में

पंकज चतुर्वेदी

अगर किसी का पाचन तंत्र कमजोर होता है, मतलब उसे खाना-पीना कम पचने लगता है, तो डॉक्टर अक्सर उसे मूंग दाल खाने की सलाह देते हैं। लेकिन अब जो मूंग बाजार में आ रही है, वह सामान्य बीमार व्यक्ति को भी गंभीर जानलेवा रोग का शिकार बना सकती है। ऐसा मुनाफे के चक्कर में हो रहा है, और यह काम किसानों के हाथों से हो रहा है।

देश में मूंग की फसल की 35 प्रतिशत पैदावार मध्य प्रदेश में होती है। शुरुआत में राज्य सरकार ने मूंग की सरकारी खरीदी पर हिचकिचाहट दिखाई। इस पर सियासत भी गरमा गई। सरकारी तंत्र को समझ में आ गया था कि अधिक फसल और इसे जल्दी पकाने के लिए किसान जिस रसायन का इस्तेमाल कर रहे हैं, असल में वह जहर है। यह ध्यान रखने की बात है कि अगर मध्य प्रदेश के किसान कोई अनुचित तरीका अपना रहे हैं, तो देश के अन्य राज्यों में भी इस किस्म के उपाय अमल में लाए जाने का संदेह तो होगा ही। मध्य प्रदेश में इस साल मूंग का सरकारी खरीदी मूल्य 8,558 रुपये प्रति क्विंटल तय किया गया है। यह दाम बीते चार साल में 1,362 रुपये बढ़े हैं। बढ़ते दाम, तीसरी फसल की लालसा और कम रकबे में अधिक उत्पाद के चलते किसान का मूंग की तरफ आकर्षण भी बढ़ा, और इसके साथ लालच भी।

मध्य प्रदेश के कृषि विभाग ने राज्य शासन को बताया कि किसान मूंग की फसल में खरपतवार नाशक दवा पैराक्वाट डाइक्लोराइड का बड़े पैमाने पर उपयोग कर रहे हैं। इसे स्थानीय रूप से “सफाया” भी कहा जाता है। कई देशों में यह प्रतिबंधित है। पर हमारे यहां किसान इसका उपयोग धड़ल्ले से कर रहे हैं। दरअसल, मूंग की फसल खेतों में एक साथ नहीं पकती। कुछ पौधे जल्दी, तो कुछ देर से पकते हैं। ऐसे में, मजदूरों से तुड़ाई में समय और खर्च ज्यादा लगता है। फसल को एकसाथ सुखाने के लिए पैराक्वाट तत्काल असर करती है। इससे एक ही दिन में पूरी फसल सूख जाती है। फिर हार्वेस्टर से उसकी कटाई हो जाती है। यही नहीं, इसके इस्तेमाल से कच्ची मूंग के

दाने भी चमकीले हरे दिखते हैं। इस तरह इनका वजन अधिक लगता है और इससे दाम अधिक मिल जाते हैं। दरअसल, किसान रबी और खरीफ की फसल के बीच तीन महीनों में मूंग की फसल तैयार करने के लिए यह जहरीला जतन कर रहे हैं।

भारत में कोई तीस लाख मीट्रिक टन मूंग का उत्पादन होता है। बीमारों के लिए इसे पथ्य भोजन मानने की वजह यह है कि मूंग में मौजूद स्टार्च और प्रोटीन छोटे अणुओं में टूटकर जल्दी पच जाते हैं। इसमें कम मात्रा में रेजिन होता है, जो पेट में गैस नहीं बनाता। 100 ग्राम मूंग में लगभग 105 कैलोरी और बहुत कम वसा होता है। आयुर्वेद के अनुसार, मूंग दाल त्रिदोष नाशक मानी जाती है- यानी, यह वात, पित्त और कफ को संतुलित करती है। बीमारियों में इसका सेवन शरीर को संतुलन में लाता है। मूंग में फ्लावोनॉयड्स, कैपफेरॉल, विटामिन सी और फेनॉलिक यौगिक होते हैं, जो शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता को मजबूत करते हैं और बीमारियों से लड़ने में मदद करते हैं।

डॉक्टरों के अनुसार, पैराक्वाट डाइक्लोराइड के इस्तेमाल से उगाई गई मूंग के सेवन से कैंसर, लंग्स, किडनी, लिवर फेल्योर, पार्किंसंस रोग का खतरा रहता है। सबसे बड़ा खतरा यह है कि मूंग के दानों में पैराक्वाट के अवशेष रह जाते हैं। जब इन दानों का सेवन किया जाता है, तो ये सीधे मानव शरीर में पहुंचते हैं। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एपिडेमियोलॉजी 2024 में प्रकाशित शोध के अनुसार, पैराक्वाट डाइक्लोराइड की रासायनिक संरचना एमपीपी प्लस नामक एक जहरीले पदार्थ से मिलती-जुलती है, जो कि एमपीटीपी नामक रसायन से बनता है। यह वही रसायन है, जिससे 1983 में लोगों में बड़े पैमाने पर पार्किंसंस जैसा रोग पैदा हुआ था। यह काफी टॉक्सिक हबींसाइड है। इसका थोड़ा-सा भी सेवन या सांस के माध्यम से संपर्क जानलेवा होता है। मुंह और गले में जलन, उल्टी-दस्त, पेट में तेज दर्द प्रमुख लक्षण हैं। इससे लंग्स, लिवर, किडनी फेल्योर का खतरा रहता है। सांस के जरिये लेने पर फेफड़ों में फाइब्रोसिस हो सकता है। यह कैंसर कारक होने के साथ ही आंखों



वेअसर प्रतिबंध मध्य प्रदेश में मूंग की फसल सुखाने के लिए पैराक्वाट डाइक्लोराइड का छिड़काव करते किसान।

और श्वसन तंत्र को प्रभावित करता है। यह केमिकल आर्गेनो फास्फेट फैमिली का है, जिसकी बेहद कम मात्रा किसी रूप में लेने से उल्टी-दस्त और पेट में मरोड़ हो सकती है। कुछ ज्यादा होने पर आंतें जलकर सिकुड़ जाती हैं, यहां तक कि मौत हो जाती है। सबसे बड़ी बात इस कीटनाशक का अभी तक कोई एंटी डोज नहीं उपलब्ध है।

मध्य प्रदेश सरकार समय-समय पर कहती रही है कि मूंग की फसल को सुखाने के लिए पैराक्वाट का उपयोग करना कानूनन गलत है। इसके बावजूद इस जहर का इस्तेमाल बढ़ता ही जा रहा है। जब 20 लाख टन डाल मंडी में आ ही गई तो चाहे सरकार खरीदे या फिर व्यापारी, इसे आम लोगों की नसों में घुलना ही है। भारत में पैराक्वाट डाइक्लोराइड 24 प्रतिशत एस एल फॉर्मूलेशन पंजीकृत है और इसका उपयोग आलू, कपास, रबर, चाय, मक्का, चावल, अंगूर और जलीय खरपतवारों पर खरपतवार नियंत्रण के लिए अनुमोदित है। लेकिन इसे मूंग जैसी दालों की फसल को सुखाने के लिए इस्तेमाल करना भारतीय कीटनाशक अधिनियम का उल्लंघन है। फिर भी, जब किसान इसका इस्तेमाल खेत में कर रहा होता है, तब उसे रोकने या उस पर अपराध पंजीबद्ध किया नहीं जाता। अकेले मध्य प्रदेश ही नहीं, उड़ीसा और पंजाब में भी जहरीली मूंग के मामले सामने आए हैं।

संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन और विश्व स्वास्थ्य संगठन के कीटनाशक प्रबंधन के अंतरराष्ट्रीय

मानकों के अंतर्गत 40 से अधिक देशों ने पैराक्वाट को प्रतिबंधित किया है। इनमें यूरोपियन यूनियन, स्वीडन जैसे देशों के साथ-साथ चीन, थाईलैंड जैसे हमारे पड़ोसी भी हैं। इसे पीआईसी, अर्थात “पूर्व सूचित सहमति” सूची में शामिल करने की कई बार मांग की गई, लेकिन भारत सहित कुछ देशों के विरोध के कारण यह स्वीकृत नहीं हो सका।

हालांकि, यह मिट्टी में आंशिक रूप से निष्क्रिय हो जाता है, फिर भी लंबे समय तक मिट्टी में बना रह सकता है, जिससे मिट्टी के सजीव जीवाणु, कवक, कृमि, और अन्य सूक्ष्म जीवों पर इसका प्रतिकूल असर होता है। इससे मिट्टी की उर्वरता और जलधारण क्षमता घट जाती है। वैज्ञानिक शोध बताते हैं कि यह नदी, नहर, तालाबों में उपस्थित मछलियों, मेढकों और जलजीवों के लिए विषैला है। इससे जल जनित जीवों में श्वसन विकार, जनन क्षमता में गिरावट, और मृत्यु दर में वृद्धि देखी गई है।

पैराक्वाट पर सरकार की नीति ही ढुलमुल है। केन्द्र सरकार ने पैराक्वाट को प्रतिबंधित रसायनों की सूची में नहीं डाला है, हालांकि केरल और ओडिशा जैसे कुछ राज्यों ने इसे प्रतिबंधित कर दिया है। फिर भी, इन प्रतिबंधों का असर सीमित है, क्योंकि इसका अवैध या गलत उपयोग अब भी बड़े पैमाने पर हो रहा है। इस पर पूर्ण प्रतिबंध न हो, तो इसके इस्तेमाल, बल्कि इसकी बिक्री पर तो कड़ी निगरानी होनी ही चाहिए। पर ऐसा नहीं हो रहा है। इसलिए ‘जहरीला’ मूंग बाजार में है। यह एक तरह से दवा का बेअसर होना है। ■

मूंग की फसल खेतों में एक साथ नहीं पकती। कुछ पौधे जल्दी, तो कुछ देर से पकते हैं। ऐसे में, मजदूरों से तुड़ाई में समय और खर्च ज्यादा लगता है। फसल को एकसाथ सुखाने के लिए पैराक्वाट डाइक्लोराइड तत्काल असर करती है। इसलिए कई देशों में प्रतिबंधित होने के बावजूद मुनाफे के लोभ में किसान इसका इस्तेमाल करते हैं

तपने लगा धरती का तीसरा ध्रुव भी

2024 एशिया के लिए जलवायु संकट की भयावह चेतावनी लेकर आया | वैश्विक तापमान के सारे रिकॉर्ड टूट गए और एशिया लगभग दोगुनी गति से गर्म हो रहा है

सीमा जावेद
2024 एक ऐसा साल बनकर उभरा है जो सिर्फ मौसम विज्ञानियों के लिए नहीं, बल्कि आम लोगों, नीति-निर्माताओं और वैज्ञानिकों के लिए भी चेतावनी की घंटी है। विश्व मौसम संगठन (डब्ल्यूएमओ) की हालिया रिपोर्ट ‘स्टेट ऑफ द क्लाइमेट इन एशिया 2024’ के अनुसार, एशिया अब वैश्विक औसत से लगभग दोगुनी रफ्तार से गर्म हो रहा है। इसका असर केवल थर्मामीटर पर दर्ज आंकड़ों तक सीमित नहीं है- यह संकट अब इंसानी जीवन, अर्थव्यवस्थाओं और प्राकृतिक संसाधनों को गहराई से प्रभावित करने लगा है। डब्ल्यूएमओ के अनुसार, 2024 में वैश्विक सतही औसत तापमान 1.55C रहा, जो 1850-1900 के पूर्व-औद्योगिक स्तर से काफी अधिक है। यह तापमान 2023 के 1.45C रिकॉर्ड को भी पार कर गया, और जिसके बाद 2024 को अब तक का सबसे गर्म वर्ष घोषित किया गया। सिर्फ 2024 ही नहीं, 2015 से 2024 तक के सभी साल अब तक के 10 सबसे गर्म वर्षों में शामिल हैं। इससे स्पष्ट है कि यह संकट एक अपवाद नहीं बल्कि ‘न्यू नार्मल’ बन चुका है।
 एशिया में रफ्तार दोगुनी 2024 में एशिया का औसत तापमान 1991-2020 की तुलना में 1.04C अधिक रहा। यह



खतरे की घंटी वैश्विक तापमान जिस तरह रिकॉर्ड तोड़ गति से बिगड़ रहा है, आने वाले दिनों में हमारे पहाड़ों, ग्लेशियरों और प्राकृतिक संसाधनों के लिए अخطा संकेत नहीं है।

डब्ल्यूएमओ रिपोर्ट बताती है कि कैसे समुद्री हीटवेव, पिघलते ग्लेशियर, और बार-बार आने वाली आपदाएं एशिया को सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिक रूप से अस्थिर बना रही हैं। तापमान इंसानी जीवन, अर्थव्यवस्थाओं और प्राकृतिक संसाधनों पर गहरा असर डाल रहा है

रुझान इसलिए भी चिंताजनक है क्योंकि एशिया का विशाल भूमि क्षेत्र, समुद्रों की तुलना में तेजी से गर्म होता है।

- म्यांमार में 48.2C का नया राष्ट्रीय रिकॉर्ड बना
- चीन, जापान और कोरिया में महीनों तक गर्मी के रिकॉर्ड टूटते रहे।
- दक्षिण और मध्य एशिया में लंबे समय तक हीटवेव का असर सामान्य जीवन, स्वास्थ्य और खेती पर गहरा पड़ा।

समुद्र भी उबाल पर

डब्ल्यूएमओ की रिपोर्ट बताती है कि एशिया

के समुद्री क्षेत्रों में अब तक की सबसे तीव्र और व्यापक हीटवेव दर्ज की गई।

- समुद्री सतह का तापमान प्रति दशक 0.24C बढ़ रहा है, जो वैश्विक औसत 0.13C से लगभग दोगुना है
- अगस्त-सितंबर 2024 के बीच, 15 मिलियन वर्ग किमी समुद्री क्षेत्र (दुनिया के समुद्रों का लगभग 10%) अत्यधिक गर्मी से प्रभावित हुआ
- विशेष रूप से उत्तर-पश्चिमी हिन्द महासागर, जापान के आस-पास के क्षेत्र, और येलो व ईस्ट चाइना सी में गंभीर प्रभाव देखा गया

इस समुद्री संकट का व्यापक असर मछुआरों की आजीविका, कोरल रीफ, और समुद्री जैव विविधता पर पड़ा

है, जिससे तटीय समुदायों के लिए संकट और गहरा गया है।

पिघलते ग्लेशियर

हाई माउंटेन एशिया (एचएमए)- जिसमें हिमालय, तिब्बती पठार और तियान शान पर्वत श्रृंखलाएं शामिल हैं, दुनिया का सबसे बड़ा गैर-ध्रुवीय हिम भंडार है। 2023-2024 में इस क्षेत्र के 24 में से 23 ग्लेशियरों में द्रव्यमान की हानि दर्ज की गई।

- उरुमची ग्लेशियर नंबर 1 ने 1959 के बाद से अब तक का सबसे खराब संतुलन दर्ज किया
- कम बर्फबारी और अत्यधिक गर्मी ने स्थिति को बदतर बना दिया

निर्णायक कदमों का समय

डब्ल्यूएमओ महासचिव सेलेस्टे साओलो का मानना ​​है कि: “जलवायु संकेतकों में बदलाव- मसलन, सतह तापमान, समुद्री स्तर और ग्लेशियर द्रव्यमान- अब समाजों और अर्थव्यवस्थाओं के लिए वास्तविक खतरा बन चुके हैं। मौसम का अतिरेक या चरम मौसम अब असामान्य बात नहीं रही।” हालात देखते हुए, वक्त आ गया है जब सरकारें, वैज्ञानिक संस्थाएं और स्थानीय समुदाय एकजुट होकर जलवायु परिवर्तन से लड़ने का रणनीतिक और ठोस कदम उठाएं। ■

स्रोत: gaonconnection.com



बात त्रिभाषा की, चाल-चरित्र दोहरा

फिलहाल जीत का सेहरा कोई बांध ले, यह दीर्घकालिक एजेंडा तब तक नहीं रुकने वाला, जब तक इस देश की सत्ता पर भाजपा काबिज है

शिवकुमार एस.

इस देश में जो लोग अंग्रेजी बोलते हैं, उन्हें बहुत जल्द ही शर्मिंदगी महसूस होगी ! एक किताब के विमोचन अवसर पर केन्द्रीय गृह मंत्री अमित शाह 19 जून 2025 को यही कह रहे थे। उन्होंने कहा, “एक ‘संपूर्ण भारत’ की कल्पना” (इसका अर्थ जो भी हो) “आधी-अधूरी विदेशी भाषाओं के जरिये नहीं की जा सकती”।

जाहिर है, इस पर प्रतिक्रिया तय थी और जनता में ऐसा आक्रोश दिखा कि शाह को एक बार फिर पैर पीछे खींचने पड़े। 26 जून को दिल्ली में केन्द्र सरकार के राजभाषा विभाग के स्वर्ण जयंती समारोह में उन्होंने कहा: “मैं यह मानता हूं कि हिन्दी किसी भी भारतीय भाषा की विरोधी हो ही नहीं सकती। हिन्दी तो सभी भारतीय भाषाओं की ‘सखी’ है।”

पाठकों को याद होगा जब प्रधानमंत्री मोदी ने तमिलनाडु के नेताओं का मजाक उड़ाया था कि वे जब उन्हें चिट्ठी लिखते हैं, हस्ताक्षर अंग्रेजी में करते हैं। अप्रैल की एक जनसभा में उन्होंने तंज कसते हुए कहा था, “उन्हें तमिल पर इतना ही गर्व है कि वे अपने पत्रों पर भी अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं”।

इस साल की शुरुआत में ही केन्द्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान ने डीएमके नेताओं पर नई शिक्षा नीति (एनईपी) पर जनता को गुमराह करने और तमिलनाडु के छात्रों के हितों की अनदेखी का आरोप लगाया था। उन्होंने धमकी दी थी कि अगर दक्षिणी राज्य एनईपी का त्रि-भाषा फॉर्मूला नहीं अपनाते, तो वे ‘समग्र शिक्षा अभियान’ के तहत केन्द्रीय निधि पर रोक लगा देंगे। आंध्र प्रदेश में टीडीपी (और नई दिल्ली में भाजपा की सहयोगी) ने हिन्दी को ‘स्वेच्छा से’ स्वीकार करने का कूटनीतिक बयान भले दिया हो, लेकिन दूहरे राज्यों ने ऐसा लचीलापन नहीं दिखाया। तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एम.के. स्टालिन ने प्राथमिक शिक्षा में राज्य के द्वि-भाषा फॉर्मूले से पीछे हटने से न सिर्फ़ इनकार किया बल्कि केन्द्र पर हिन्दी थोपने का आरोप भी लगाया।

दक्षिणी राज्यों ने केन्द्र सरकार के दृष्टिकोण की न सिर्फ़ आलोचना की, यह भी कहा कि वे जिस तरह प्राथमिक शिक्षा के 85 प्रतिशत हिस्से का वित्तपोषण करते हैं, नीतिगत निर्णयों में उनकी भूमिका भी होनी चाहिए। उन्होंने त्रि-भाषा प्रणाली लागू करने में हिन्दी भाषी भाजपा शासित राज्यों के प्रभाव पर भी सवाल उठाए और केन्द्र से कहा कि वह पहले उन राज्यों में शिक्षा की बदहाली दुरुस्त करे।

2025 के शुरुआती छह महीनों में भाषाई हमले तेज हुए और पहले तमिलनाडु और फिर महाराष्ट्र में बसे हिन्दी भाषियों के खिलाफ नफरत, सड़कों और बाजारों में झड़पों का कारण बनी। विरोध या इनकार का जवाब हिंसा और धमकी से मिला।

अंग्रेजी भी ठीक से जानने वाले, निराश हिन्दी भाषी, खासकर तबादले वाली नैकरियों में लगे लोग तीसरी भाषा सीखने की शर्त थोपे जाने पर नाराज दिखे। दक्षिणी राज्यों द्वारा अपनाए गए द्वि-भाषा फॉर्मूले को सही ठहराने



भाषा सिवाद मुंबई में बच्चों को पढ़ाई जा रही है हिन्दी और मीरा थरंदर में प्रदर्शन कर रहे एमएनएस कार्यकर्ताओं को हिरासत में लेते पुलिसकर्मी।

की विडंबना पर सवाल उठते हुए उन्होंने पूछा, “आखिर हम कितनी भाषाएं सीखें?”

यहां संक्षिप्त ही सही, इतिहास के एक पन्ने की याद दिलाना जरूरी है। यह सही है कि संविधान सभा (1946-49) के कई सदस्य ‘एकीकृत’ भाषा के पक्ष में थे, लेकिन हिन्दी को राजभाषा बनाने वाला प्रस्ताव सिर्फ़ एक मत से पारित हुआ। संकल्प यह लिया गया कि अंग्रेजी 15 वर्षों तक तो राजभाषा रहेगी ही, उसके बाद भी राज्य जब तक चाहें, आधिकारिक भाषाओं में से एक बनी रहेगी।

सी. राजगोपालाचारी ने 1937 में मद्रास प्रेसीडेंसी में हिन्दुस्तानी सीखना अनिवार्य कर दिया था। (हालांकि 1940 में, ब्रिटिश सरकार ने इसे रद्द कर दिया।) 1968 में, उन्होंने स्वराज्य में लिखा, ‘हिन्दी, अधिक से अधिक, एक बड़े अल्पसंख्यक वर्ग की भाषा है, ठीक उसी तरह जैसे तमिल एक मध्यम आकार वाले अल्पसंख्यक वर्ग की भाषा... अपने सबसे उन्नत रूप में भी, एक भाषा के तौर पर हिन्दी आधुनिक ज्ञान को व्यक्त करने के लिए आवश्यक तकनीकी शब्दावली से पूरी तरह लैस नहीं है।’ 1963 में हिन्दी जब केन्द्र सरकार की आधिकारिक भाषा के रूप में अपनाई गई, भाषा संबंधी आंदोलनों की एक और लहर भड़क उठी। त्रि-भाषा सूत्र पहली बार 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अपनाया जरूर गया था, लेकिन इसे कभी गंभीरता से लागू नहीं किया गया। सच तो यही है कि ज्यादातर राज्यों में न सिर्फ़ अंग्रेजी



और तीसरी भाषा में बल्कि उत्तरी राज्यों में संस्कृत यहां तक कि मातृभाषा में भी भाषा दक्षता प्रायः कम है।

राजनीति विज्ञानी सुहास पलशीकर ‘द इंडियन एक्सप्रेस’ (8 जुलाई 2025) में लिखते हुए हिन्दी को ‘अनौपचारिक रूप से आधिकारिक भाषा’ बनाने के लिए चल रहे एक सोचे-समझे प्रयास को व्याख्याित करते हैं: “मौजूदा महाराष्ट्र सरकार की हिन्दी समर्थक नीति (जो कक्षा 1 से हिन्दी शुरू करने के उसके अब असफल प्रयास में देखी जा सकती है) हिन्दी (शुद्ध हिन्दी या हिन्दुस्तानी नहीं) को राष्ट्रभाषा बनाने की भाजपा की उसी दीर्घकालिक महत्वाकांक्षा के अनुरूप है, जिसका मकसद हर मामले में एकरूपता लागू करने और एक राष्ट्र-एक भाषा नीति लागू करने की उसकी चिरपरिचित प्रवृत्ति के अनुरूप है।”

सुहास लिखते हैं, यह सिर्फ़ तभी संभव है जब ‘क्षेत्रीय भाषाओं के समर्थक एक भाषा को ‘राष्ट्रीय’ बनाने, और एक संस्कृति को ‘राष्ट्रीय’ बनाने के बीच के रिश्ते को समझें और उसकी सराहना करें’, तभी हम ‘राष्ट्रीय भाषा की राजनीति के रूप में प्रच्छन्न राष्ट्रवाद की राजनीति को बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।’ और शायद यही कारण है कि भाषा का मुद्दा खत्म होने का नाम नहीं ले रहा है।

जिस तरह स्टालिन अगले साल होने वाले विधानसभा चुनाव में अपने हिन्दी विरोधी रुख का फायदा उठाने की उम्मीद कर रहे हैं, भाजपा से संबद्ध दलों सहित कोई भी द्रविड़ पार्टी इस मुद्दे पर विपरीत रुख अपनाने का जोखिम नहीं उठाना चाहेगी

2020 में लागू और फिर 2021 में संशोधित नई शिक्षा नीति ने राज्यों के शिक्षा बोर्डों और छात्रों को ‘लचीलापन’ दे दिया। फिर, महाराष्ट्र सरकार को कक्षा 1 में मराठी और अंग्रेजी के साथ हिन्दी पढ़ाना अनिवार्य

भाजपा की वैचारिकी में धर्म-निरपेक्ष की समझ

यह देखना अपने आप में दिलचस्प होगा कि पार्टी के कितने

मंत्री या सदस्य ‘इंटीग्रल ह्यूमनिज्म’ का मतलब समझा पाते हैं

आकार पटेल

भारतीय जनता पार्टी के संविधान का अनुच्छेद 3 कहता है, “‘एकात्म मानववाद पार्टी का दर्शन होगा।’ पार्टी के सदस्यता फॉर्म में एक अनिवार्य प्रतिज्ञा भी है। इस प्रतिज्ञा की पहली पंक्ति है: ‘मैं एकात्म मानववाद में विश्वास करता हूं जो भारतीय जनता पार्टी का मूल दर्शन है।’ एकात्म मानववाद ऐसा शब्द है जिससे बहुत से भारतीय परिचित हैं, लेकिन बहुत कम लोग इसके बारे में ज्यादा जानते हैं। एकात्म मानववाद में दीनदयाल उपाध्याय द्वारा 22 से 25 अप्रैल 1965 के बीच मुंबई में दिए गए चार व्याख्यानों का पाठ शामिल है। उपाध्याय कला में स्नातक थे और आरएसएस के गुरु प्रकाशन, पांचजन्य में पत्रकार थे। जब उन्होंने ये व्याख्यान दिए, तब उनकी उम्र लगभग पचास वर्ष थी और व्याख्यान देने के कुछ साल बाद वह जनसंघ के अध्यक्ष बन गए। आइए, भाजपा के इस दर्शन को समझते हैं, और इसका विश्लेषण किसी और समय करेंगे। इसमें आगे जो तर्क दिया गया है, उसका सारांश दीनदयाल उपाध्याय ने अपने भाषणों में पेश किया है, और इसे यथासंभव तटस्थ रूप से प्रस्तुत किया गया है।

वह लिखते हैं कि भारत के सामने मौजूद समस्याओं का कारण राष्ट्रीय पहचान की उपेक्षा है। राष्ट्र एक व्यक्ति की तरह है, और अगर उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों की अवहेलना की जाए या उन्हें दबाया जाए, तो वह बीमार हो जाता है। स्वतंत्रता के बावजूद, भारत अभी भी इस बात को लेकर अनिर्णीत था कि विकास को साकार करने के लिए उसे किस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। स्वतंत्रता तभी सार्थक है, जब वह संस्कृति को अभिव्यक्त करने का साधन हो।

भारत में मुख्य ध्यान आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर था। ऐसा इसलिए था, क्योंकि भारत ने पश्चिमी विज्ञान के साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सिद्धांतों को देखने का पश्चिमी तरीका अपनाया था। भारतीयों के लिए पश्चिमीकरण प्रगति का पर्याय था। हालांकि, पश्चिम राष्ट्रवाद, लोकतंत्र और समाजवाद को समझने में असमर्थ था।

ये मूलतः पश्चिमी आदर्श थे, और ये सभी एक दूसरे के

साथ संघर्ष में थे। ये विचारधाराएं सार्वभौमिक नहीं थीं, और उन विशेष लोगों और संस्कृतियों की सीमाओं से मुक्त नहीं थीं, जिन्होंने इन वादों को जन्म दिया। आयुर्वेद में कहा गया है कि हमें स्थानीय बीमारियों के लिए स्थानीय उपचार खोजने की आवश्यकता है। क्या भारतीय संस्कृति दुनिया के लिए समाधान प्रदान कर सकती है?

आम तौर पर माना जाता है कि भारतीय संस्कृति आत्मा की मुक्ति के बारे में सोचती है और शरीर, मन और बुद्धि की परवाह नहीं करती, लेकिन यह सच नहीं है। भारतीय संस्कृति में धर्म को सबसे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। धर्म प्राकृतिक नियम हैं जो शाश्वत और सार्वभौमिक रूप से लागू होता है।

धर्म कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका से ऊपर है और यह लोगों से भी ऊपर है। अगर 45 करोड़ भारतीयों में से एक को छोड़कर सभी ने किसी चीज के लिए वोट दिया, तो भी यह गलत होगा, अगर वह धर्म के खिलाफ हो।

राष्ट्रीय एकता भारत का धर्म है और इसलिए विविधता समस्या पैदा करने वाली थी। इस कारण भारत के संविधान को संघीय से एकात्मक में बदलने की आवश्यकता है, जिसमें राज्यों के लिए कोई विधायी शक्ति नहीं होगी, केवल केन्द्र के पास होगी। व्यक्तियों और समाज की संस्थाओं के बीच संघर्ष पतन और विकृति का संकेत है।

पश्चिम ने व्यक्ति और राज्य के बीच के प्रतिकूल संबंधों को प्रगति का कारण मानकर गलत किया। व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से बना होता है। मनुष्य आत्मा के साथ पैदा होता है। व्यक्ति, आत्मा और चरित्र एक दूसरे से अलग हैं। व्यक्ति की आत्मा व्यक्तिगत इतिहास से अप्रभावित रहती है। इसी तरह, राष्ट्रीय संस्कृति भी इतिहास द्वारा निरंतर संशोधित होती रहती है। संस्कृति में वे सभी चीजें शामिल हैं जिन्हें अच्छा और सराहनीय माना जाता है, लेकिन वे ‘चिति’, यानी राष्ट्रीय



इसे क्या कहेंगे भाजपा की सोच में धर्म प्राकृतिक नियम है जो शाश्वत और सार्वभौमिक रूप से लागू होता है।

लोगों को धर्म के खिलाफ काम करने का कोई अधिकार नहीं है। संविधान में इस्तेमाल किए गए शब्द ‘सेक्युलरिज्म’ और ‘धर्मानिरपेक्षता’ गलत और बुरे हैं क्योंकि धर्म राज्य के लिए एक आवश्यक शर्त है। जो धर्म पर आधारित नहीं है, वह अस्वीकार्य है, और इसलिए धर्मानिरपेक्षता में घातक दोष है। राष्ट्रीय एकता भारत का धर्म है और इसलिए विविधता समस्या पैदा करने वाली थी। इस कारण भारत के संविधान को संघीय से एकात्मक में बदलने की आवश्यकता है, जिसमें राज्यों के लिए कोई विधायी शक्ति नहीं होगी, केवल केन्द्र के पास होगी। व्यक्तियों और समाज की संस्थाओं के बीच संघर्ष पतन और विकृति का संकेत है।

पश्चिम ने व्यक्ति और राज्य के बीच के प्रतिकूल संबंधों को प्रगति का कारण मानकर गलत किया। व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से बना होता है। मनुष्य आत्मा के साथ पैदा होता है। व्यक्ति, आत्मा और चरित्र एक दूसरे से अलग हैं। व्यक्ति की आत्मा व्यक्तिगत इतिहास से अप्रभावित रहती है। इसी तरह, राष्ट्रीय संस्कृति भी इतिहास द्वारा निरंतर संशोधित होती रहती है।

संस्कृति में वे सभी चीजें शामिल हैं जिन्हें अच्छा और सराहनीय माना जाता है, लेकिन वे ‘चिति’, यानी राष्ट्रीय

आत्मा को प्रभावित नहीं करतीं। भारत की राष्ट्रीय आत्मा मौलिक और केन्द्रीय है। चिति सांस्कृतिक उन्नति की दिशा निर्धारित करती है। यह उन चीजों को छानती है जिन्हें संस्कृति से बाहर रखा जाना है। समाज सजीव होते हैं और समाज में शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा होती है। कुछ पश्चिमी लोग इस सत्य को स्वीकार करने लगे थे। उनमें से एक विलियम मैकडॉगल ने कहा कि एक समूह के पास एक मन और एक मनोविज्ञान होता है, उसके सोचने और कार्य करने के अपने तरीके होते हैं, ठीक वैसे ही जैसे एक व्यक्ति के पास होते हैं। समाज की एक जन्मजात प्रकृति होती है जो उसके इतिहास पर आधारित नहीं होती। घटनाएं उस पर असर नहीं डालतीं। यह समूह प्रकृति व्यक्तियों में आत्मा की तरह होती है, जिस पर इतिहास का भी कोई असर नहीं होता। यह समूह मानसिकता भीड़ की मानसिकता की तरह होती है, लेकिन लंबे समय में विकसित होती है। राष्ट्र को एक आदर्श और मातृभूमि दोनों की आवश्यकता होती है और तभी वह राष्ट्र होता है। और राज्य इस राष्ट्र की रक्षा के लिए मौजूद है, जिसके पास एक आदर्श और एक मातृभूमि है।

भारत और पश्चिम के बीच अंतर यह है कि हम शरीर को केवल धर्म प्राप्ति का साधन मानते हैं। हमारे प्रयास धर्म,

करने की जरूरत क्यों पड़ गई? 17 जून को घोषित इस फैसले का न सिर्फ़ व्यापक जनविरोध हुआ बल्कि राज्य सरकार की अपनी भाषा विशेषज्ञ समिति भी इसके विरोध में आ गई, जिसके बाद 30 जून को आनन-फानान फैसला वापस ले लिया गया। किसी से भी सलाह तक नहीं ली गई।

कक्षा 1 से 5 तक के स्कूली बच्चों के लिए त्रि-भाषा फॉर्मूला अपनाने के मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस के फैसले पर दो तरह की आपत्तियां थीं: बच्चों पर इतनी कम उम्र में तीसरी भाषा का बोझ पड़ने से होने वाला संभावित असर और मूल मराठी भाषियों का विरोध। मनसे (महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना) कार्यकर्ता मुंबई की सड़कों पर आ गए और मराठी न बोल पाने वालों पर हमले करने लगे। पीड़ितों ने पलटवार करते हुए पूछा भी कि क्या मुकेश अंबानी या गौतम अडानी मराठी बोलते हैं!

सारे हंगामे का एक नतीजा यह दिखा कि 20 साल से ‘बिछड़े’ चचेरे भाई उद्धव और राज ठाकरे ‘मराठियों की रक्षा’ के नाम पर फिर एक साथ आ गए। उनके सार्वजनिक एका के तीन दिन बाद ही, 8 जुलाई को मीरा रोड पर तनाव फैल गया, जब मनसे और शिवसेना (यूबीटी) ने निषेधाज्ञा का उल्लंघन करते हुए एक बड़ा विरोध प्रदर्शन किया। अब ‘दोनों भाईयों’ ने लड़ाई जारी रखने जिस तरह शपथ ली है, उससे लगता है कि फडणवीस के पीछे हटने, फैसला स्थगित करने तथा अर्थशास्त्री नरेंद्र जाधव के नेतृत्व में आगे का रास्ता सुझाने के लिए एक नई समिति गठित करने के फैसलों से उन्हें थोड़ा और बल मिल गया है।

इस तरह ‘बिन मांगी मुराद’ मिलने से प्रसन्न तमिलनाडु के मुख्यमंत्री ने ठाकरे भाइयों को उनके अभियान की सफलता पर लिए बधाई देते हुए एक्स पर लिखा: ‘हिन्दी थोपने से रोकने के लिए द्रविड़ मुनेत्र कडगम और तमिलनाडु के लोगों ने पीढ़ी दर पीढ़ी जो आंदोलन चलाया, भाषा के अधिकार का वही संघर्ष अब राज्य की सीमाओं को पार कर चुका है और महाराष्ट्र में विरोध के तूफान की तरह दिखाई दे रहा है’। स्टालिन ने यह सवाल पूछने के लिए राज ठाकरे की सराहना करते हुए कि- आखिर हिन्दी भाषी राज्यों में कौन सी तीसरी भाषा पढ़ाई जा रही है, गैर-हिन्दी भाषी राज्यों की प्रगति को रोकने की भाजपा की कोशिशों की सख्त आलोचना की। हालांकि जिस तरह स्टालिन अगले साल होने वाले विधानसभा चुनाव में अपने हिन्दी विरोधी रुख का फायदा उठाने की उम्मीद कर रहे हैं, भाजपा से संबद्ध दलों सहित कोई भी द्रविड़ पार्टी इस मुद्दे पर विपरीत रुख अपनाने का जोखिम नहीं उठाना चाहेगी।

फिलहाल जीत का सेहरा कोई भी बांध ले, हिन्दी को राजभाषा और राष्ट्रभाषा- दोनों ही रूपों में प्रचारित करने का यह दीर्घकालिक एजेंडा तब तक नहीं रुकने वाला, जब तक इस देश में भाजपा का राज है। विरोध प्रदर्शनों से भाजपा और आरएसएस को असर नहीं पड़ता। वे बस अगले अवसर तक इंतजार करेंगे; और अपनी अन्य ‘एकात्मक कल्पनाओं’ के अनुरूप पूरे देश पर हिन्दी थोपने का अभियान जारी रखेंगे। ■

शौर्य और साहस की अप्रतिम मिसाल

‘अंग्रेजो! भारत छोड़ो’ आंदोलन का जिक्र आते ही जिस ‘ग़ैड ओल्ड लेडी’ की याद आती है, उन्हीं अरुणा आसफ अली की 16 जुलाई को जयंती है

कृष्ण प्रताप सिंह

अपने देश में जब भी स्वतंत्रता संघर्ष का जिक्र होता है, ऐतिहासिक ‘अंग्रेजो! भारत छोड़ो’ आंदोलन का जिक्र होता ही होता है और तब ‘ग़ैड ओल्ड लेडी’ कहलाने वाली इस आंदोलन की वीरंगना अरुणा आसफ अली की याद भी बरबस आ ही जाती है। क्योंकि उनके द्वारा प्रदर्शित अपूर्व साहस के बगैर इस आंदोलन का इतिहास वैसा नहीं हो सकता था, जैसा है।

दरअसल, 8 अगस्त 1942 को बंबई (अब मुंबई) के ऐतिहासिक ग्वालिया टैंक (अगस्त क्रांति) मैदान में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने अधिवेशन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में अंग्रेजों के तुरंत भारत छोड़ देने का प्रस्ताव पारित कर इसके लिए आंदोलन शुरू करने का फैसला किया और उसको यूसुफ मेहर अली के सुझाव पर ‘अंग्रेजो! भारत छोड़ो’ नाम दिया, तो जैसा कि बहुत स्वाभाविक था, ब्रिटिश सरकार को मिर्ची लग गई और वह भारी दमन पर उतर आई।

उसने आनन-फ़ानन महात्मा गांधी समेत कांग्रेस के प्रायः सारे बड़े नेताओं को जेल भेजकर अधिवेशन और आंदोलन को विफल करने में अपनी पूरी ताकत झोंक दी। जगह-जगह कर्फ्यू का एलान कर दिया और प्रेस के साथ शांतिपूर्ण प्रदर्शनों और हड़तालों पर भी पाबंदी लगा दी। फिर भी महात्मा के ‘करो या मरो’ के मंत्र को अपना असर दिखाने से नहीं रोक पाई।

अरुणा आसफ अली का जन्म 16 जुलाई 1909 में गुमला जिले में हुआ था। उनका परिवार एक प्रमुख ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका बचपन ही अत्यंत ही शिक्षा के माहौल में बीता। उन्होंने अपने माता-पिता की प्रेरणा से ही अपने जीवन में समाज के प्रति समर्पण और देश के प्रति समर्पण का संकल्प लिया।

ब्रिटिश सरकार द्वारा सारी संपत्ति जब्त कर लिए जाने के बावजूद अरुणा आसफ अली ने आत्मसमर्पण नहीं किया और भूमिगत रहकर आजादी की मुहिम को मजबूत करती रहीं। बिगड़ते स्वास्थ्य के बावजूद आत्मसमर्पण करने के बापू के आग्रह की मी उन्होंने अनसुनी कर दी



परिणामस्वरूप 9 अगस्त 1942 की सुबह ने देखा कि जोशीले आंदोलनकारियों ने सारी सरकारी बंदियों को धता बताकर आंदोलन को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का सबसे शक्तिशाली आंदोलन बना दिया है। इस अवसर पर अरुणा आसफ अली ने ग्वालिया टैंक मैदान में जैसे प्राणप्रण से अप्रतिम साहस व शौर्य के साथ खुद को आंदोलन के हित में झोंका, उसकी इतिहास में शायद ही कोई और मिसाल हो। ब्रिटिश सरकार की समझ थी कि चूंकि कांग्रेस के प्रायः सारे बड़े नेताओं को गिरफ्तार या नजरबंद कर दिया गया

है, उसको ग्वालिया टैंक मैदान में, और तो और, तिरंगा फहराने वाला भी कोई नहीं मिलेगा। लेकिन साहस की पुतली अरुणा आसफ अली ने उसे गलत सिद्ध करते हुए न सिर्फ वहां कांग्रेस कार्यकर्ताओं को नेतृत्व प्रदान कर अधिवेशन के शेष एजेंडे को पूरा कराया, बल्कि पुलिस को चकमा देकर मैदान में तिरंगा भी फहरा दिया। आज की तारीख में उनको खास तौर पर उनके इसी महान साहस के लिए याद किया जाता है, लेकिन सच पूछिए तो यह उनके लिए महज एक शुरुआत थी।

स्वतंत्रता आंदोलन में उनकी इसके बाद की अनेक प्रकार की भूमिगत सक्रियताओं से क्रुद्ध सरकार द्वारा उनकी सारी संपत्ति जब्त कर लिए जाने के बावजूद उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया और भूमिगत रहकर देश के अलग-अलग हिस्सों में आजादी की मुहिम को मजबूती प्रदान करती रहीं। शारीरिक कमजोरी और बिगड़ते स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने आत्मसमर्पण करने के बापू के आग्रह की भी अनसुनी

कर दी। तब बापू ने एक हस्तलिखित नोट में उनके प्रति स्नेह से भरकर उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा था कि मैं आपकी हिम्मत और वीरता की प्रशंसा से भर गया हूं।

उनका जन्म 16 जुलाई 1909 को तत्कालीन पंजाब (अब हरियाणा) के कालका नामक स्थान पर एक उच्चवर्गीय बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता उपेंद्रनाथ गांगुली, जो बंगाल के बारीसाल (जो अब बंगलादेश की सीमा में स्थित है) से विस्थापित होकर संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) में बस गए थे। वह एक रेस्तरां चलाते थे। उपेंद्र और उनकी पत्नी अम्बालिका- दोनों ब्रह्म समाज (बंगाल के पुनर्जागरण के दौर के एकेश्वरवादी सुधारवादी आंदोलन) के अनुयायी थे और विचारों के स्तर पर काफी उदार थे।

उदार माता-पिता ने अरुणा को स्कूली शिक्षा लाहौर के सेक्रेड हार्ट कॉन्वेंट से दिलाई और आगे की शिक्षा नैनीताल के ऑल सेंट्स कॉलेज से। स्नातक तक की शिक्षा पूरी करने के बाद अरुणा कलकत्ता (अब कोलकाता) चली गईं

कविताओं के जरिये संवाद की कोशिश

साफ है पार्वती तिर्की को कविता-संग्रह ‘फिर उगना’ के लिए साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार 2025 से सम्मानित किए जाने का मतलब

हिन्दी कविता की युवतम पीढ़ी में पार्वती तिर्की का स्वर अलग से पहचाना जा सकता है। उनकी कविताओं में आदिवासी जीवन-दृष्टि, प्रकृति और सांस्कृतिक स्मृतियों का वह रूप सामने आता है, जो अब तक मुख्यधारा के साहित्य में बहुत कम दिखाई देता रहा है। झारखंड के कुडुख आदिवासी समुदाय से आनेवाली कवि पार्वती तिर्की को उनके कविता-संग्रह 'फिर उगना' के लिए साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार 2025 से सम्मानित किए जाने की घोषणा हुई है। यह न केवल उनके रचनात्मक योगदान का सम्मान है, बल्कि हिन्दी कविता के निरंतर समृद्ध होते हुए भूगोल और अनुभव संसार के विस्तार की स्वीकृति भी है।

पुरस्कार की घोषणा के बाद पार्वती तिर्की ने कहा, “मैंने कविताओं के माध्यम से संवाद की कोशिश की है। मुझे खुशी है कि इस संवाद का सम्मान हुआ है। संवाद के जरिये विविध जनसंस्कृतियों के मध्य तालमेल और विश्वास का रिश्ता बनता है। इसी संघर्ष के लिए लेखन है, इसका सम्मान हुआ है, तो आत्मविश्वास बढ़ा है।”

कविता के भीतर एक जीवंत दुनिया

‘फिर उगना’ पार्वती तिर्की की पहली काव्य-कृति है जो वर्ष

2023 में राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित हुई थी। इस संग्रह की कविताएं सरल, सच्ची और संवेदनशील भाषा में लिखी गई हैं, जो पाठक को सीधे संवाद की तरह महसूस होती हैं। वह जीवन की जटिलताओं को बहुत सहज ढंग से कहने में सक्षम हैं। इन कविताओं में धरती, पेड़, चिड़ियां, चांद-सितारे और जंगल सिर्फ प्रतीक नहीं हैं- जीवंत दुनिया की तरह मौजूद हैं। पार्वती तिर्की अपनी कविताओं में बिना किसी कृत्रिम सजावट के आदिवासी जीवन के अनुभवों को हिस्सा बनाती हैं। वह आधुनिक सभ्यता के दबाव और आदिवासी संस्कृति की जिजीविषा के बीच चल रहे तनाव को भी गहराई से रेखांकित करती हैं। उनका यह संग्रह नई भाषा, नई संवेदना और नए दृष्टिकोण की उपस्थिति दर्न कराता है। पुरस्कार की घोषणा पर राजकमल प्रकाशन समूह के अध्यक्ष अशोक महेश्वरी ने कहा, पार्वती तिर्की का लेखन यह साबित करता है कि परंपरा और आधुनिकता एक साथ कविता में जी सकती हैं। उनकी कविताएं बताती हैं कि आज हिन्दी कविता में नया क्या हो रहा है और कहाँ से हो रहा है। उनको साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार से सम्मानित किया जाना इस बात की पुष्टि करता है कि कविता का भविष्य सिर्फ शहरों या स्थापित नामों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह वहां भी जन्म

ले रही है जहां भाषा, प्रकृति और परंपरा का रिश्ता अब भी जीवित है। यह हमारे लिए गर्व की बात है कि ऐसी युवा प्रतिभा की पहली कृति का प्रकाशन राजकमल ने किया है।

पार्वती तिर्की का जन्म 16 जनवरी 1994 को झारखंड के गुमला जिले में हुआ। उनकी आरंभिक शिक्षा जवाहर नवोदय विद्यालय, गुमला में हुई। इसके बाद उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से हिन्दी साहित्य में स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त की। वहीं के हिन्दी विभाग से 'कुडुख आदिवासी गीत : जीवन राग और जीवन संघर्ष' विषय पर पीएचडी की डिग्री हासिल की।

पार्वती की विशेष अभिरुचि कविताओं और लोकगीतों में है। वह कहानियां भी लिखती हैं। उनकी रचनाएं हिन्दी की अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं और वेब-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। उनका पहला कविता-संग्रह 'फिर उगना' वर्ष 2023 में राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह को हिन्दी कविता के समकालीन परिदृश्य में एक नई और जरूरी आवाज के रूप में देखा गया है। वर्तमान में पार्वती तिर्की, राम लखन सिंह यादव कॉलेज (रांची विश्वविद्यालय), हिन्दी विभाग में सहायक प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं। ■



‘फिर उगना’ से चार कविताएं

निरंतर

इस जंगल में
चिड़ियों और मनुष्य का संवाद
नदी की तरह कायम था-
निरन्तर...
बारिश से पहले
जंगल गए लोग घर लौट आते थे
बारिश के पहाड़ पर उतरने से पहले
मनुष्य पहाड़ से उतर जाता था।
इस जंगल में
जाइनसाला पक्षी का डेरा था,
बारिश से पहले वह बोल देती थी—
‘ओ मनुष्य, देखो!
बारिश होने वाली है,
तुम जल्दी अपने घर चले जाओ।’
जाइनसाला का सन्देश
आज भी लोगों को अनचाहे भीगने नहीं देता
वे बारिश से पहले जंगल से घर लौट आते हैं। ■

सोसो बंगला

आसमान में तारे खिले थे,
पेड़ पर भगजोगनियों का झुंड
गांव के धुमकुड़िया में
झकड़ा थे लोग, रात के भोजन के बाद
सौमरा की कहानी सुनने को बैठे थे-
“पहाड़ की तराई में
जब लोगों ने गांव बसाया...
वहां एक अंग्रेज आया
वह गांव के प्रमुख से मिला...
उससे कहा-
आप दयालु हैं, मुझे रहने के लिए
मात्र ‘एक बैल मर की जमीन’ दीजिए
प्रमुख ने सोचा- बस इतनी-सी बात
और वह राजी हो गया।
अंग्रेज ‘कल आता हूँ’
कहकर चला गया
अगली सुबह जब वह आया

मुला भूत

जंगल शान्त था...
जंगल का मुला भूत
पेड़ पर झूल रहा था
कन्द-फूल और लकड़ी लेने
जाने वाले लोगों से
वह खूब खेलता था,
वह उनको रास्ते से भटका देता था।
लकड़ी चुनने के लिए
जंगल जाने वाले लोग
मुला भूत से परिचित थे
इसलिए जंगल में घुसते हुए
वे प्रार्थना करते थे
इधर बीच
उसकी प्रार्थना न करने वाले लोग आए थे
शायद वे जंगलखोर थे
उन लोगों ने
जंगल के बीच

गीत गाते हुए लोग

गीत गाते हुए लोग
कभी भीड़ का हिस्सा नहीं हुए
धर्म की ध्वजा उठाए लोगों ने
जब देखा
गीत गाते लोगों को
वे खोजने लगे उनका धर्म
उनकी ध्वजा
अपनी खोज में नाकाम होकर
उन्होंने उन लोगों को जंगली कहा
वे समझ नहीं पाए
कि मनुष्य जंगल का हिस्सा है
जंगली समझे जाने वाले लोगों ने
कभी अपना प्रतिपक्ष नहीं रखा
वे गीत गाते रहे
और कभी भीड़ का हिस्सा नहीं बने।

राजकमल बॉक्स से सामग्रा





हर
हर
महादेव



राजकीय शिववर्णी मेला

11 जुलाई से
09 अगस्त 2025

के शुभ अवसर पर

**बाबा बैद्यनाथ धाम एवं
बाबा बासुकीनाथ धाम**

की पावन धरा में सभी श्रद्धालुओं का
हार्दिक स्वागत एवं जोहार

महादेव सभी भक्तों की मनोकामना पूर्ण करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, झारखण्ड सरकार



हेमन्त सोरेन
मुख्यमंत्री, झारखण्ड